रेत की दरार
धूस्वां सायमि

रेत की दरार

रेत की दरार

धूस्वां सायमि

राधाकृष्ण प्रकाशन

मूल्य : ७ रुपये

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन
२ अंसारी रोड, दरियागंज
दिल्ली-११०००६

मुद्रक
शान प्रिंटर्स, द्वारा शाहदरा प्रिंटिंग, प्रेस
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

...मैं । एक विधवा ?

एक बच्चे की माँ । जिस बच्चे का बाप अभी भी ज़िन्दा है । मेरा जीवन एक रेत है । मेरे जीवन में अब कभी भी बहार नहीं आयेगी । नहीं, नहीं, मुझे इस जीवन में बहार की कल्पना भी नहीं करनी चाहिए । मैं एक रेत हूँ । दरार हूँ । रेत की दरार की एक नज़्म...!

आँखें घर जाने की सूचना देने वाली घड़ी पर फिसलने लगी थीं, पर काम काफी बाक़ी था । काम तो कभी खत्म होने को आता ही नहीं । मन को तो विचारों से मिल कर बहने में आनन्द आता है, तो फिर काम कैसे खत्म हो ! पर यहाँ काम खत्म करने की कोई ज़रूरत भी नहीं है । मैं तो काम खत्म करने के लिए नहीं, समय बिताने के लिए इस आफिस में काम करती हूँ । मैनेजर को भी आज घर जाने की जल्दी नहीं थी, इसलिए मैं काम करती रही । मन तो आफिस के दरवाज़े से बाहर निकल कर घर की लम्बी राह में पहुँच चुका है पर शरीर तो अभी भी आफिस की चारदीवारी में बँधा पड़ा था ।

काम, काम, काम ! कितना भी करो, कभी इसका अन्त नहीं । जितना न करो इसका अन्त हो जाता है, काम करते जाओ बढ़ता जाता है । इसका कोई अन्त नहीं, कोई किनारा नहीं, आफिस में मेरा काम अनन्त है, अथाह है । आज मैनेजर को भी कोई फ़ोन करके नहीं बुला रहा है...जल्दी आओ कह कर घर से भी फ़ोन नहीं आता । पर आयेगा क्यों ? उसकी बीवी नहीं है, इसलिए तो वह घर जाने को उत्सुक

नहीं होता, बेक़रार नहीं होता।

वातावरण में फ़ोन की मधुर ध्वनि गूँज उठी।

...लो अब तो काम नहीं, खत्म होते हुए भी खत्म होने को है... मेरी आँखें कुछ सुनने की लालसा से यन्त्रवत मैनेजर के कमरे की ओर उठ गयीं।...आज काम बन्द करें, कल करना बाकी का काम...मैनेजर के इन शब्दों के लिए मेरी आँखें मैनेजर के कमरे में जाने वाले दरवाज़े के परदे पर चिपक गयीं।

—तिमिला जी ! मैनेजर के कमरे में मुझे बुलाया जा रहा है।

—जी !

—आपका फ़ोन आया है।

मैं मैनेजर के कमरे में चली गयी। 'किसी प्रेस से आपका फोन आया है'—इन शब्दों से मेरे विचारों को एक धक्का लगा।...प्रेस से किसने फ़ोन किया ? क्यों किया ? रामलालजी यहाँ नहीं हैं। शायद आ गये होंगे। फ़ोन में अजनबी आवाज़ थी, पर बात तो समझ में आ गयी। रामलालजी आ गये हैं। एक ज़रूरी काम के लिए मुझे घर आने को कहा है। क्या करूँ, क्या न करूँ, मुझे तो कुछ न सूझा। अपने में इतनी खो गयी कि फ़ोन क्रेडल पर रखना भी भूल गयी। मन अपने शरीर को कुर्सी के घेराव में रखना नहीं चाहता था। पर जाने के लिए मैनेजर को कहना भी नहीं चाहती थी। एक अजीब द्वन्द्व में मैं पड़ गयी। मैं असमंजस में खड़ी रह गयी। मैनेजर ने शायद मेरी मनःस्थिति को भाँप लिया।

—क्यों ? क्या हुआ ?

—कुछ नहीं, सर !

—शायद घर पर कोई काम है ?

—.........।

—ठीक है आज काम बन्द कर दो। कल ज़रा जल्दी आ जाइयेगा।

मेरे पैर अनजाने में अपने कमरे की ओर चल पड़े। टेबुल पर पड़ी फाइलें दराज़ में रख कर, बैग लेकर मैं आफिस से बाहर आ गयी। सचमुच एक पिंजरे से मैं बाहर आ गयी हूँ। एक घेराव, क़ैद की एक

हालत का खात्मा। कितना आनन्द, कितना सन्तोष और कितना सुखमय है प्रत्येक दिन का यह क्षण जिसने मशीन बने मानव को एक बार फिर मानवता प्रदान की !

...रामलालजी ने स्वयं फ़ोन क्यों नहीं किया ? कितना भी कहो वह अपनी आदत को नहीं बदलते। 'घर आओ, बहुत ज़रूरी काम है।' अजीब जीव है ! घर बुलाने की क्या ज़रूरत ? फ़ोन पर ही बात कर ली होती...।

अब तक मैं सड़क पर पहुँच चुकी थी। मॅनेजर से पूछना भी भूल गयी।

वे क्या कहेंगे ? क्या कहेंगे ? आज भूल गयी तो क्या हुआ, रोज़ तो पूछ लेती थी। आज तो उन्हीं ने ही जाने को कहा है। नहीं भी कहा तो क्या हुआ, पूछने और न पूछने में क्या रखा है ? मुझे मालूम है यह खिन्नता मॅनेजर के प्रति नहीं, रामलालजी के प्रति है। यह खिन्नता हरदम मेरी थी और रहेगी।

...रामलालजी जानते हैं कि मुझे आफिस के बाद घर जाते हुए देर हो जाती है। आफिस से घर तक कितनी दूरी तय करनी पड़ती है ! फिर भी अगर कुछ कहो तो कहेंगे, बस में जाने वालों को क्या फरक पड़ता है। गहरी होती हुई संध्या में अकेली राहों में गुज़रना भी तो खतरनाक होता है। रामलालजी को क्या यह भी पता नहीं ? इस पर भी बस के लिए इन्तज़ार करना पड़े तो और भी मुश्किल है। आज रामलालजी के घर से होकर अपने घर तक जाने में बहुत देर हो जायेगी। दादाजी को कितनी चिन्ता होगी ! आज रामलालजी के घर नहीं जाऊँगी। उनके बुलाने पर मुझे जाने की क्या ज़रूरत है ? यदि वह मेरा कहना नहीं मानते तो मुझे उनका कहना मानने की क्या आवश्यकता ? आज ही देखो। वह दूसरे से फ़ोन करने को कह सकते हैं, क्या वह आप नहीं कर सकते थे ? नहीं जाऊँगी...नहीं जाऊँगी। वह गुस्सा करेंगे। करने दो। वह मुझे गुस्सा करने वाले कौन होते हैं ? मेरी इच्छा नहीं है, मैं नहीं जाऊँगी। मैं अपने-आप से ही उलझने लगी।

अपने विचारों को देख कर मुझे अपने-आप पर ही गुस्सा आ गया।

न जाने का निर्णय कर लेने पर भी इन विचारों में अपने को उलझता देख कर मुझे स्वयं पर ही आश्चर्य हो रहा था। इन बेकार की बातों को अपने से दूर करने के लिए मैंने चारों तरफ नज़र घुमायी। वातावरण की सजीवता में मैं अपने विचारों की मृत्यु खोजने लगी। त्रिभुवन राजपथ की ओर से शहर जाने वाले ट्रक-ड्राइवरों के चेहरों में एक थका हुआ उल्लास देखने को मिला। साईकिल पर सवार लोग घरों की ओर जा रहे थे। विश्वविद्यालय से आती हुई कुछ लड़कियाँ मुझसे आगे थीं। मेरी नज़र अचानक ही उनकी ओर चली गयी। जेल के बाहर सिपाही वाली-बाल खेल रहे थे। लड़कियों के उस झुन्ड ने एक बार पीछे की ओर देखा और खिलखिला कर हँस पड़ीं।

किसी की हालत पर इनको हँसने का क्या अधिकार है ?

इनकी आदत ही ऐसी है, जब देखो मुझे देख कर हँस देती हैं और मेरी तरफ इशारा करके बातें करती हैं। पर मुझे इन बातों में नहीं उलझना चाहिए। फिर भी इन लोगों पर मुझे गुस्सा आ गया। पता नहीं क्यों इन लोगों को देख कर मुझे हमेशा गुस्सा आ जाता है। उस विजया को ही देखो। कितना हँसती है ! सड़क जैसे उसी की ही हो ! अपने को कितना 'शो' करती है ! बस में भी मुझे उसी के साथ जाना पड़ता है। वह अपने-आपको बहुत पढ़ा हुआ समझती है। संसार में ज्ञान का ठेका जैसे उसी ने ही ले रखा है। उसकी बात तो क्या, बाप को ही देखो; वह तो उससे भी एक हाथ ऊपर है। एक दिन की बात है। एक ही स्थान पर रहने के लिए विजया से परिचित होकर रहना ही अच्छा है, इस विचार से मैं उसके घर गयी तो उसका बाप कहने लगा—विजया को तुम्हारी तरह नौकरी नहीं करना है। तुम्हारी तरह...। न जाने क्या-क्या कहा, मुझे तो इसकी याद भी नहीं आती।

बस-स्टाप आ गया। कोई बस भी नहीं थी। आफिस अभी-अभी बन्द हुए थे। बहुत से लोग इन्तज़ार कर रहे थे। विजया तो सहेलियों के बीच गप्पे हाँक रही थी। जब कभी मेरी तरफ देख लेती तो खिलखिला कर हँस पड़ती थी। मैं इसे सहन नहीं कर पा रही थी। एक बस आयी पर यह बस मेरे घर टंगाल की ओर जाने वाली नहीं थी। यह रामलालजी

के घर पाटन की ग्रोर जाने वाली बस थी।

...ग्राज मैं उस महारानी के साथ नहीं जाऊँगी। उसके ग्रपमान-भरे व्यवहार को मैं सहन नहीं कर सकती...!

विजया मेरी तरफ देख-देख कर ग्रब भी बातें कर रहीं थी। ग्रब तो उसके साथ एक नौजवान भी था। उसके हाव-भाव तथा उसकी चंचलता में एक प्रकार की शोखी थी। ग्रब वह उस नौजवान के साथ मेरी ग्रोर ग्राने लगी।

...महारानी है...विजया महारानी का चेहरा तो देखो!

ग्रनजाने में मेरे पैर पाटन की बस की ग्रोर बढ़ने लगे। बस में भीड़ थी। ग्रब तो खड़े होकर ही जाना पड़ेगा। ग्राज घर जाने में भी देर हो जायेगी। तो क्या हुग्रा? रामलालजी ने ग्राने के लिए कहा ग्रौर मैं चली ग्रायी। इसके लिए मुझे किसी से डरने की क्या ज़रूरत है। मुझे कौन क्या कहेगा? किसी को कुछ कहने का क्या ग्रधिकार है? मैं कमाती हूँ, खाती हूँ। इन्हीं विचारों में ही थी कि बस चल पड़ी। ग्राज एक दिन तो विजया से दूर रहूँगी लेकिन रोज़ तो रामलालजी के यहाँ नहीं जाना पड़ेगा। रामलालजी के घर जाने की इच्छा हुई ग्रौर बहाना विजया के लिए बना लिया। मैं ग्रपने-ग्राप ही हँस पड़ी। मेरी हँसी सस्ती नहीं थी। इसे कोई देख नहीं रहा था। भीड़ बढ़ती गयी। बस पाटन-गेट की ग्रोर बढ़ रही थी। ग्राखिर बस बस-स्टाप पर पहुँच गयी। एक मन ने बस से न उतरने का निर्णय किया। ग्रगर किसी ने देख लिया तो कह दूँगी कि मैं ग्रपनी एक सहेली के यहाँ जा रही हूँ। पाटन में मेरी बहुत सहेलियाँ हैं। ग्राखिर बस से उतर पड़ी। जब तक सिनेमा-हाल पार नहीं किया मेरे मन में द्वन्द चलता रहा। पर किसी भी जान-पहचान वाले से भेंट नहीं हुई। मुझे डर लगने लगा कि कहीं तारा से भेंट न हो जाये। उस दिन ही कह रही थी कि रामलालजी के यहाँ ग्रा सकती हो ग्रौर मेरे घर नहीं। इस पर भी मेरे पैर रुक नहीं रहे थे। पत्थर बिछे सड़कों पर लड़खड़ा नहीं रहे थे। रामलालजी का घर नज़दीक ग्रा रहा था। तारा के घर जाना चाहिए। ग्रगर वह जान जायेगी कि मैं पाटन ग्राकर भी उसके घर नहीं गयी तो उसे चोट लगेगी। पैर तो तारा के

घर जाने की इच्छा करने लगे पर मन तो रामलालजी के यहाँ पहुँचने के लिए तड़प रहा था। आखिर मैं रामलालजी के घर की ओर ही चल पड़ी।...रामलालजी ने क्यों बुलाया ? शायद वह दिल्ली से मेरे लिए बैग लाये होंगे। अवश्य यही बात है।

एक सूअर सरसराते हुए सड़क पार कर गया। पल-भर के लिए मैं सहम गयी और कुछ झुँझला भी गयी। परन्तु इसी झुँझलाहट के सहारे मैं रामलालजी के घर के आँगन में पहुँच गयी। सुहावनी संध्या के आँचल में प्रांगण दिन-भर धूप सेक कर गुमसुम पड़ा था। बगीचे के एक ओर खड़ा सन्तरे का पेड़ मुझे देख कर मुस्करा पड़ा। प्रवेश-द्वार के ठीक एक ओर...रामलालजी का कमरा था। वहाँ किसी से उनकी बात करने की आवाज़ खिड़कियों से छन कर आ रही थी। दूसरी तथा तीसरी मंज़िल की खिड़कियों में कोई नहीं था। मेरी नज़र ऊपर चढ़ती गयी। रामलालजी के घर की छत से धूप का कुछ अंश फिसल कर बिखर गया था। उसी जगह मेरी नज़र अटक गयी। उनके कमरे से जिस नारी की आवाज़ आ रही थी वह पहचानी-सी लगी और फिर आकाश से मैं धरती पर आ गयी। हाँ, यह तो बनेपा की मोहनमाया मौसी है। शायद मेरे विषय में ही बात कर रहे होंगे। लो देखो, मोहनमाया मौसी ने मेरा ही नाम लिया। मुझे ऊपर जाने का साहस न हुआ और लौटने की भी इच्छा न हुई। आँगन में लगे पानी के नल पर कुछ औरतें घड़े में पानी भरने के लिए आयी हुई थीं। मोहनमाया मौसी ने मेरे विषय में सब कह दिया होगा। रामलालजी शायद मुझे देखते ही गुस्से में निकल जाने को कह दें। पर क्यों ? मैंने उनका क्या बिगाड़ा है ? मेरे अतीत को लेकर मुझे कुछ कहने का उनका क्या अधिकार है ? मुझे उनसे किस बात का डर है ? अपने अतीत से मुझे क्यों डर लग रहा है ? जो होगा देख लूंगी। नहीं। मुझे जाना नहीं चाहिए। मोहनमाया मौसी को मेरे विषय में सब बातें रामलालजी को कहने का मौक़ा मुझे देना चाहिए।... मैंने लौट कर आने का निर्णय कर लिया था। ठीक उसी समय रामलालजी की बहन ने देख लिया और कहने लगी—

—तिमिला दीदी, क्या आप परायी हैं जो इस तरह यहाँ खड़ी हैं ?

चलिये न ऊपर।

मुझे कुछ कहते न बन पड़ा।

—तिमिला दीदी, मुझसे नाराज़ हो। एक बार भी इधर नहीं आयीं।

—नहीं मुझे काम से फुर्सत नहीं मिली, इसलिए नहीं आयी।

—मैं खूब जानती हूँ। अब तो फुर्सत मिलेगी ही। राम भैया यहाँ नहीं थे, तो क्या आना ही बन्द हो गया! हम भी तो कुछ हैं।

रामलालजी की बहिन खिलखिला कर हँस पड़ी। मैं असमंजस में पड़ गयी। शायद लज्जा से मेरा चेहरा भी लाल हो गया। हार मान मैं उसके साथ रामलालजी के पास चली गयी। रामलालजी के कमरे में मैंने पाँव रखा ही था कि मोहनमाया मौसी उठ पड़ी और रामलालजी से कहने लगी—अच्छा, चलती हूँ। घर जाकर चूल्हा भी जलाना है। तिमिला, तुम कैसी हो? कभी-कभी मेरे यहाँ भी आ जाया करो। हम भी तो अपने ही हैं।

मोहनमाया मौसी चली गयी। रामलालजी ने कुछ न कहा। मुझे तब मोहनमाया मौसी का जाना खल गया। मैंने उनकी तरफ देखा। वे विचारों के संसार में खोये हुए थे।...अवश्य ही इस मौसी की बच्ची ने कुछ कहा होगा वरना यह चुप रहने वाले नहीं। बड़े बातूनी हैं रामलाल-जी। पर आज तो मानो बोलना ही भूल गये हैं। एक शब्द भी उनके मुँह से नहीं निकल रहा था।

भावना की लहरों से लिपटे हुए मन के संकेत पर मेरी नज़र एक बार फिर रामलालजी की ओर जा पड़ी। आँखें चार हुईं, पर उनकी आँखों की भाषा मैं समझ न सकी। हाँ, अवश्य उनकी आँखों में एक कंपन-सा दिखायी पड़ा और वे कुछ असमंजस में पड़ गये। मौन वातावरण को तोड़ते हुए मैंने कहा—

—क्या आपकी तबीयत ठीक नहीं?

—नहीं। ठीक हूँ। आज ही आया हूँ, कुछ थकावट-सी है। बैठो न, खड़ी क्यों हो!

—पर आपने मुझे किस लिए बुलाया है?

—ऐसे ही।

मौन वातावरण कुछ बदल गया था पर फिर भी नीरवता छायी हुई थी। रामलालजी का स्वर बदला। 'मूड' कुछ उखड़ा-उखड़ा नज़र आता था। शिष्टाचारवश कुछ बातें कर रहे थे।

अगर कुछ नहीं कहना था तो इन्होंने मुझे क्यों बुलाया? मन में कोई बात ज़रूर है शायद कहने की हिम्मत नहीं पड़ती। मुझे कहीं चोट न लगे इसलिए कुछ नहीं कह रहे। पर मुझे तो घर भी जाना है। बहुत दूर जाना है...।

मैं उठ पड़ी।

—मैं जाऊँ तारा के घर भी जाना है।

—तिमिला!

रामलालजी के सम्बोधन ने मेरे पैरों को जकड़ लिया।

—जब आपको मुझसे कोई काम नहीं तो मुझे यहाँ बैठने की क्या आवश्यकता? आपको भी मुझे बुलाने की क्या ज़रूरत?

—तिमिला, तुम तो...।

—चाचा जी, चाचा जी!

कुछ बच्चे दौड़ते हुए अन्दर आ गये। मुझे देखते ही सब मेरी ओर चले आये।

—देखो चाचा ने हमें यह चूड़ी और रिबन लाकर दिया है। दोनों बच्चियाँ मुझे अपनी चूड़ियाँ और सिर पर बँधे रिबन दिखाने लगीं। इतने में रामलालजी की बहिन आ गयी और बच्चियों को देख कर कह पड़ी—

—इनको तो यह चीजें, जो आता है उसको दिखाने में मजा आ रहा है। जाओ, माँ खाने के लिए बुला रही है।

बच्चियों के बाहर जाते ही रामलालजी की बहिन ने मुझसे कहा—

—क्यों तिमिला दीदी, आप उठ क्यों गयीं? क्या जाने का वक्त हो गया? कुछ देर बैठिये न।

मेरे हाथों को अपने हाथों में लेकर मुझे बिठा कर चली गयी। केवल मैं और रामलालजी कमरे में रह गये।

—क्यों तिमिला ग्राज तो तुम...?

ठीक उसी वक्त रामलालजी की भाभी ग्रा गयी।

—तिमिला दीदी, तुम तो ग्रब परायी होती जा रही हो। लो चाय पियो।

चाय, पूरी ग्रौर जलेबियाँ सामने रखते हुए रामलालजी की भाभी ने कहा। मुझे खाते न देख कर सन्दूक के ऊपर से पानी का करुवा सामने रख कर वह बाहर चली गयी।

—लो ग्रब पहले चाय पियो तब बातें होंगी। इतना कह कर रामलालजी भी बाहर चले गये। मुझे बहुत बुरा लगा। यह क्या तमाशा है ! क्या एक कप चाय के लिए मैं यहाँ ग्रायी हूँ ? नहीं, मैं यह चाय नहीं पीऊँगी। उनकी भाभी द्वारा लायी हुई चाय मैं नहीं पिऊँगी। ग्रगर उसका वश चले तो वह मेरा क्या नहीं कर सकती ? उस दिन की बात को मैं कैसे भूल सकती हूँ ? मैं ग्रभी उनके ग्राँगन मैं पहुँची ही थी कि मुझे सुना कर रामलालजी की माँ से कहने लगी, देखो वह चुड़ैल ग्राज भी ग्रा गयी। खिड़की से झाँक रही रामलालजी की माँ कितनी परेशानी में पड़ गयी थी। तारा ने कहा था, उसकी भाभी डायन है। घर के सारे व्यक्तियों को ग्रपने कब्ज़े में रखा हुग्रा है। मुझसे तो वह नाराज़ है। उसका कहना है कि मेरे ही कारण रामलालजी उसकी माँजी से शादी करना नहीं चाहते। सारे पाटन में इस बात को फैलाया हुग्रा है। मैंने किसी को किसी से शादी न करने को कभी नहीं कहा। रामलालजी से मेरी शादी ! मैंने इसकी कल्पना तक नहीं की ग्रौर यह सम्भव भी नहीं है।...रेत की दरार की नज़्म की शादी...! मैं स्वयं ही हँस पड़ी।

रामलालजी कमरे में ग्रा गये।

—क्यों, ग्रब तुमको हमारे यहाँ चाय पीना भी ग्रच्छा नहीं लगता ! भाभी ठीक ही कहती हैं कि ग्रब तुम इस घर को बहुत पराया समझती हो।

मेरे मन में ग्राया कि कह दूँ कि मैंने इस घर को ग्रपना समझा ही कब था, पर होंठों ने केवझ इतना ही कहा—नहीं।

—फिर चाय क्यों नहीं पी ?

—ऐसे ही।

मुझे अपना जवाब बहुत अच्छा लगा। मैंने सन्तोष की साँस ली। मैं देख रही थी कि मेरे इस जवाब से रामलालजी को कुछ झटका-सा लगा है। अब गाड़ी उल्टी चलने लगी थी। मैं नहीं, रामलालजी उलझन में पड़ गये थे। मुझे उन पर तरस आ गया। अनजाने में ही मैंने चाय पीना शुरू कर दिया। ऐसा लगता था कि रामलालजी कुछ कहना चाहते हैं पर कह नहीं पा रहे।

—तिमिला !

मैंने सुन कर भी अनसुनी कर दी। मुझे तो बात करने की नहीं बात सुनने की इच्छा थी। मेरी आँखें यंत्रवत रामलालजी की ओर उठ गयीं। वे भी मुझे घूर रहे थे। उनकी आँखों में एक अजीब-सी मस्ती थी। मेरे सारे शरीर में खुशी की लहर दौड़ गयी। सारा तन काँपने लगा। उसी क्षण उम कमरे से भाग आने की इच्छा हुई।

—तिमिला ! मैं...मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ। तुम्हारा क्या विचार है ?

रामलालजी के सीधे प्रश्न पर मैं बौखला उठी। मैं इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थी। फिर भी हृदय प्रसन्न होकर सन्न हो गया। मेरे मन की बात होंठों पर आ गयी। मैं कह पड़ी—रामलालजी...आपके साथ... नहीं। रामलालजी आपके और मेरे निर्णय कर लेने पर भी यह शादी नहीं हो सकती। यह सम्भव ही नहीं। इसलिए रामलालजी, इस विचार को मन से निकाल ही देना चाहिए। इस ख़याल से आप बेकार में परेशान न हों...।

मेरा सिर चकराने लगा। मैं इससे अधिक कुछ न कह सकी। आँखों में आँसू आ गये। हवा के झोंके की भाँति मैं कमरे से बाहर निकल आयी। रामलालजी बुत बने मुझे देख रहे थे। मुझे लगा कि उनकी आँखें मेरे पैरों को जकड़ कर उस कमरे में मुझे क़ैद कर लेना चाहती हैं। मैं जल्दी-जल्दी आँगन से निकल कर घर के बाहर पहुँच गयी। पर मुझे लगा कि उनकी आँखें अब भी मेरा पीछा कर रही हैं लगातार, अपलक। गली से मुड़ कर सड़क पर पहुँचने ही वाली थी कि

मैं देखे देखा तारा कहीं जाने के लिए अपने घर से निकल रही है ! तारा ने देश लिया तो क्या सोचेगी ? नहीं, मुझे आज उससे नहीं मिलना चाहिए। नजदीक ही बौद्ध विहार था, उसी में ही चली गयीं। उसके बीचोंबीच एक सुनहरा देवालय था। मेरा शरीर वहाँ होते हुए भी मन रामलालजी के इर्द-गिर्द घूम रहा था। देवालय के सामने कमल पर एक वस्त्र फैला पड़ा था।

...यह जीवन कितना रहस्यमय है ! यह जीवन कितना कठोर है ! ठीक मेरे जीवन की तरह, ठीक मेरे अतीत की तरह। रामलालजी... मुझे इस पर विचार नहीं करना चाहिए...कभी नहीं करना चाहिए।

पर मेरी आँखें कमल पर फैले वस्त्र से हटने को तैयार नहीं थीं। कमल और वस्त्र ! नारी और नर। मैं और रामलाल। असम्भव, असम्भव ! मैं चंचल हो उठी। मेरी परेशानी बढ़ गयी। आँखों को बन्द करके विचारों के संसार से निकलना चाहा पर इससे मेरा भय बढ़ने लगा। मैंने आँखें एकाएक खोल दीं। नज़र उसी जगह चिपक गयी। कमल, उसके ऊपर फैला हुआ वस्त्र और इन पर बिखरा हुआ गहरे लाल रंग का सिन्दूर। मैं लजा गयी। घबरा कर चारों ओर देखा। भाग्यवश वहाँ कोई नहीं था। मैं अपने पथ पर चलने लगी। मन कभी उदास हो जाता तो कभी आनन्द की लहरों में मचलने लगता।

अतीत और वर्तमान के द्वन्द व संघर्ष में मेरे पैर बढ़तें चले गये।

मेरे पैर बढ़ते चले जा रहे थे। इनको किसी की परवाह नहीं थी। परिचित कंकरों से, पथ के एक-एक कण से कानाफूसी करते मस्ती में झूम कर बढ़ रहे थे। परन्तु मेरा मन पैरों से भी आगे पाँव लगा कर घर पहुँचने को उतावला हो रहा था।...क्या भाईसाहब लौट आये होंगे ? भाभीजी को पीट रहे होंगे ? यह भाईसाहब भी अजीब जीव हैं ! घर आयेंगे तो शोरगुल मचायेंगे, अगर न आये तो सबको चिन्ता। यही अकेला

व्यक्ति सारे परिवार को तबाह कर चुका है। भाभी तो इनके कार्य-कलापों से इतनी उकता गयी हैं कि कभी-कभी अनजाने में कह पड़ती हैं—इनके जीते रहने से तो मर जाना ही अच्छा है। ऐसी बातों पर मेरी और भाभी की झड़प भी हो जाती। भाभी मुझ से भी नाराज़ हो जातीं। कई दिनों तक बात भी न करतीं। ऐसे समय में स्वयं मुझे मर जाने की इच्छा होती। पर हार कर मैं ही उन्हें मनाती। अगर न मनाऊँ तो क्या करूँ क्योंकि मुझे तो उनके घर में ही रहना है। मेरा जीवन मेरा होकर भी अपना नहीं था...आँखें भर आयीं। उस सुनसान पथ पर अकेलेपन से भरे अपने जीवन को याद करके जी भर कर रोने की इच्छा हुई। मेरा जीवन कराह पड़ा। सड़क के एक किनारे पर कोई भजन गाया जा रहा था। इस भजन ने मुझे झकझोर दिया और तब मुझे उस खाली सड़क पर आकाश और धरती के बीच लटकते हुए अपने अकेले जीवन पर तरस आ गया। कुछ घबराहट-सी होने लगी। सड़क का मोड़ आ गया। मन में भय ने चुपके-चुपके घुसना शुरू कर दिया। एक हल्के-से चढ़ाव के बाद सड़क दूसरी ओर मुड़ गयी। बग़ल की छोटी-सी दुकान बन्द हो चुकी थी। सड़क की उतराई शुरू हो गयी। सड़क के किनारे पेड़ों के झुंड ही नज़र आ रहे थे। वातावरण शान्त-सा था। इस पर मैं अकेली औरत। चिल्लाने पर भी कोई सुन नहीं पायेगा। सुन कर भी यहाँ कोई नहीं आता। अभी कुछ दिन पहले की बात है : विजया अपनी एक सहेली के साथ आ रही थी तो पेड़ों के झुंड से निकल कर कुछ लोगों ने उसकी सब चीज़ें छीन लीं। लोग तो बहुत बातें बनाते हैं। विजया जब घर पहुँची तो केवल पेटीकोट और ब्रेसरी में थी।...परन्तु विजया विजया है। मैं विजया नहीं हूँ। मैं तिमिला हूँ। मुझे कोई कुछ नहीं करेगा। मैंने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है। फिर भी दिल की धड़कन बढ़ने लगी। मैं तेज़ी से चलने लगी। कभी लगता था कि कोई पीछा कर रहा है अथवा कहीं नज़दीक ही धीरे-धीरे बातें कर रहा है। पर मुड़ कर पीछे देखने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। खेत में खड़े काग-भगोड़े को देख कर एक बार तो मेरा साँस ही रुक गया। मेरा भय मेरा पीछा कर रहा था। सड़क के बीचोंबीच जाती हुई 'मैं' ने मुझको साहस प्रदान किया। आखिर

पुल को मैंने पार किया। मन के मना करने पर भी मैंने पीछे मुड़ कर देखा। वह डरावना स्थल नीरवता की मुलायम गोद में मस्ती से सो रहा था। आगे खोया-खोया-सा पथ मेरी बाट जोह रहा था। चारों तरफ वीरानी छायी हुई थी। अब सूनेपन से डर लग रहा था। मुझे किसी के आने का भय नहीं बल्कि किसी के न होने का भय खाये जा रहा था। औरत को अकेली पाकर, पकड़ने का इरादा लिये सुनसान पथ मेरा पीछा कर रहा था। बग़ल में एक छोटी-सी नदी बेईमानी करके मुड़ पड़ेगी तब मेरा पथ कट जायेगा और सुनसान पथ अवश्य ही मुझे अपने बाहुपाश में लेकर मसल देगा। मेरे पाँवों में तेज़ी आ गयी। नदिया भी तेज़ी से बहने लगी परन्तु शून्य पथ मुझे पकड़ने में असमर्थ रहा। नदी मेरे रास्ते को काटने में असमर्थ रही। मैं अपने पथ पर बढ़ती चली गयी। आखिर गाँव के बाहर सानु भैया के घर में पहुँच गयी। दुकान में अनचाहे जल रही लालटेन ने मेरे साहस को बढ़ा दिया। सुनसान सड़क, मेरे रास्ते को रोकने वाली नदिया मुझसे भयभीत होकर पीछे हट गयी। सानु भैया की दुकान में कोई नहीं था। पर मैं वहाँ से अकेली घर जाने की हिम्मत न कर सकी। मन और वातावरण के तनाव से शरीर थक-सा गया। सानु भैया को कहूँगी कि मुझे घर पहुँचा दें। वह मेरे कहने को नहीं टालेंगे क्योंकि मैं भी तो उनका काम कर देती हूँ। समय मिलने पर उनके बेटे को पढ़ा देती हूँ। जब उनकी पत्नी को प्रसव-पीड़ा हुई तो मैंने ही मदद की थी। ये दम्पति मेरा काम हमेशा कर देते हैं। मेरे दो बार बुलाने पर चन्द्रमाया नीचे आयी।

—तिमिला ?

—क्या कर रही हो ? सानु भैया कहाँ है ?

—वे तो आप ही के घर गये हैं।

मेरे मन पर वज्रपात हुआ। मेरी नज़रों में एक प्रश्न को देख कर चन्द्रमाया ने कहा—

—आपके नाना आज बहुत देर आपकी बाट जोहते रहे। बहिन, यह देर से आने का काम अब छोड़ दो।

—क्या करूँ ? काम तो करना ही पड़ता है।

—दशरथ बाबू बुलाने आये थे, इसलिए नाना जी घबरा कर चले गये।

मेरे मन को लकवा मार गया। हिमाली आग की ठंडी आँच में मैं बेताब हो उठी।

आखिर घर में क्या होगा...भाई साहब...। मैं इससे अधिक सोचने में असमर्थ रही। मैं पूर्ण वेग से घर की ओर दौड़ पड़ी। घर का प्रवेश-द्वार खुला पड़ा था। कुत्ता दो बार भौंका लेकिन पहचान कर चुप हो गया। आँगन में पहुँच कर भी मुझे सान्त्वना न मिली। वातावरण में गज़ब की उदासीनता छायी थी। कहीं से कोई आवाज़ सुनायी नहीं दे रही थी। घर के बाहर तो निडर चली आ रही थी, घर में आकर डर लगने लगा।

—कौन ? क्या तिमिला हो ?

नानाजी के इन शब्दों ने मुझे बल प्रदान किया। सीधे उनके कमरे में चली गयी। कमरे में गहन अन्धकार था। कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। उनकी लम्बी चल रही साँसों को केवल मैं देख पा रही थी। नानाजी को जब पता लगा कि मैं कमरे में हूँ तो बोल पड़े—

—तिमिला, मुझे तो जीना भी अच्छा नहीं लगता है। हे भगवान् ! मुझे इस जीवन में क्या-क्या देखना पड़ेगा ?

—क्यों क्या हुआ, नानाजी ?

—आज भी तुम्हारे भैया और भाभी...।

नानाजी के शब्दों को खाँसी ने दबोच लिया। भाभी के कमरे से दशरथ का स्वर छन कर आ रहा था। मैं भाभी के कमरे में गयी। एक तमाशा था। कमरे में एक ओर घड़े के टुकड़े फैले हुए थे और दूसरी ओर दीवार से टकरा कर ऐनक का एक रूप अनेक रूपों में बिखरा पड़ा था। सारा वातावरण कुछ देर पहले घटित पारिवारिक संघर्ष का सबूत दे रहा था। और भाभी का चेहरा...! मुझे तो उसी क्षण, उस कमरे से, उस घर से, उस वातावरण से दूर बहुत दूर भाग जाने की इच्छा हुई। भाभी का चेहरा कच्चे घावों से भरा पड़ा था। खाने की थाली फेंकने से चीज़ें इधर-उधर पड़ी थी। सूटकेस के सारे कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। मैं सहमी हुई भाभी के चेहरे को देखने लगी।

—लो तिमिला, तुम्हीं देख लो। सबकी नज़र में मैं दोषी हूँ। मैं एक स्त्री हूँ, मैं एक पत्नी हूँ इसलिए दोषी हूँ।

—क्या हुआ, भाभी ?

भाभी एकाएक उठ पड़ी और चारों तरफ दिखा कर कहने लगी—

—इन सबको देख कर तुम स्वयं अंदाज़ा लगा सकती हो। मैंने तुम्हीं को दिखाने के लिए इन्हें सँभाला तक नहीं है। बड़े भाई की आदत को जानते हुए भी तुम मुझ पर ही दोष लगाती हो। तुमको इस घर से क्या वास्ता है ? केवल तुमको ही नहीं, किसी को भी इस घर की फिक्र नहीं है। केवल मुझे ही, हाँ मुझे ही इस घर में रहना है, बच्चों का पालन-पोषण करना है। तुम तो आफिस चली जाती हो। घर पर रहना पड़े तो मालूम हो।

सबसे ताड़ना पाकर भाभी मुझ पर गुस्सा उतार रही थी। मैं इस तथ्य को जानते हुए भी अपने को सम्भाल न सकी। मन में आया कि कह दूँ आफिस मैं मजे लेने नहीं जाती। आफिस मैं अपने लिए नहीं जाती। मेरे आफिस जाने में मेरे से अधिक भाभी के परिवार का स्वार्थ निहित है। मन के इस कथन को मैंने थाम लिया और होंठों ने विनम्र होकर कहा—

—क्यों वेकार की चिन्ता करती हैं ? कहिये न, क्या हुआ ?

इस बार भाभी जी को मेरी विनम्रता ने झकझोर दिया।

—क्या होता, वही पुरानी बातें हैं। सवेरे से ही तुम्हारे भाईसाहब बाहर गये हुये थे। खाने के लिए भी नहीं आये, संध्या हो गयी लेकिन मैंने कोई फिक्र न की परन्तु आफिस से लौटते हुए रुद्रबहादुरजी ने आकर कहा कि वे सारे कपड़े उतार कर नदी में नंगे लेटे हैं तो मैं दौड़ कर उनको लेने गयी। रुद्रबहादुरजी की सहायता से मैं उनको घर लाने में सफल हुई।

भाभी ने एक लम्बी साँस खींच कर वातावरण को एक बार फिर देखा। कुछ क्षण के लिए उनकी कारुणिक नज़र दशरथ के चेहरे पर अटक गयी। बिखरे हुए कमरे पर उन्होंने अपनी आँखों को फैला दिया। खिड़कियाँ खुली थीं। हवा के झोंके ठंड को अन्दर ढकेल रहे थे। मैंने खिड़-

कियाँ बन्द कर दीं और दशरथ के साथ बैठ गयी। भाभी को तो अपनी बातें कहने की जल्दी थी।

—रुद्रबहादुरजी जब तक थे, वह कुछ न बोले। उनके जाते ही कुछ पर बरस पड़े और कहने लगे—वह तेरा यार है, प्रेमी है। मैंने सोचा कि ऐसे आदमी से क्या बातें करूँ ? इसलिए मैं उपर चली गयी। जब मैं खाना लेकर आती हूँ तो देखती क्या हूँ कि सूटकेस के सब कपड़े बिखरे हुए हैं। जब मैंने इसका कारण पूछा तो उनका गुस्सा और बढ़ गया। आवेग में आकर कहने लगे—जाओ रुद्रबहादुर के घर और सामने रखी खाने की थाली को मुझ पर फेंक दिया।

इस बात का सबूत—थाली और कपड़े अभी भी वहाँ जैसे के तैसे थे। भाभी के स्वर में काफी परिवर्तन दीखने लगा।

—जब मैंने कहा कि आपको मुझ पर ऐसा लांछन नहीं लगाना चाहिए तो और उबल पड़े। कहने लगे—मैं काम नहीं करता हूँ, रुद्रबहादुर काम करता है इसलिए तो तुम्हें वह पसंद है। इसके बाद दीवार पर टँगी ऐनक को लेकर चकनाचूर कर दिया और कमरे में रखी हुई चीजें एक-एक करके मुझ पर फेंकने लगे। तिमिला, तुमको तो विश्वास होगा ही नहीं क्योंकि मैं तो तुम्हारे लिए परायी हूँ, उनसे तो तुम्हारा खून का रिश्ता है। परन्तु मेरे चेहरे की ओर देखो और तब कहना कि तुम्हें विश्वास है कि नहीं।

भाभी के प्रति मेरा प्यार उमड़ पड़ा। नारी की भी क्या अवस्था है ! अगर पति को कुछ हो जाये तो उसका जीवन जीवन नहीं रह जाता। पत्नी पति की केवल छाया मात्र है। भाभी का कहना अभी बाक़ी ही था।

—मुझे भी गुस्सा आ गया। जितना सहो उतनी ही इनकी आदत बिगड़ती जा रही है। मैंने कह ही दिया, तुम्हारे साथ रहने से तो मर जाना ही अच्छा है। फिर भी मुझे संतोष न हुआ। मैं अनजाने में कह उठी, मेरे लिए तो तुम मरे बराबर हो। तुम्हारे रहते हुए भी मैं विधवा हूँ और मैंने उनके सामने अपनी सारी चूड़ियाँ तोड़ दीं।

—जब तुम्हारे भाईसाहब को होश आया तो आवेश में केवल इतना

कह कर कि इस घर में मेरा रखा ही क्या है, पुरुष का मूल्य तो उसकी कमाई से आँका जाता है। मैं कमा नहीं सकता इसलिए मैं मानव होकर भी मनुष्य नहीं हूँ। मैं एक ज़िन्दा लाश हूँ जिसके कारण तुम सबको तकलीफ होती है – बाहर चले गये।

एक मन में भाभी पर दया आ रही थी और दूसरे मन में क्रोध। एक नारी को अपने पति के प्रति ऐसी भावना व्यक्त नहीं करनी चाहिए। पर पति को भी अपनी पत्नी पर ऐसी शंका नहीं होनी चाहिए। भैया तो विक्षिप्त हैं। भाभी भी भैया की विक्षिप्तता में स्वयं रँग गयी परन्तु वह मजबूर थी। तब मुझे लगा कि प्रत्येक नारी का जीवन किसी न किसी रूप में रेत की दरार की एक नज़्म है।...नहीं, नहीं, मैंने यह ग़लत सोचा है। यह तो मेरा जीवन है, भाभी का जीवन है, प्रत्येक नारी का नहीं। अपनी मनहूस छाया को नारी जाति पर फैला देना अच्छी बात नहीं। मुझे एक पल भी उस कमरे में रहने की इच्छा नहीं हुई। मैं अपने कमरे में चली आयी। मैं यहाँ अपने को बाहरी दुनिया से परिवार के परेशान वातावरण से बचा कर रखना चाहती थी। पता नहीं क्यों रेत की दरार की एक नज़्म होते हुए भी इस मनहूस दुनिया से कट कर रहना चाहती थी। मैंने अपने कमरे को घूर कर देखा। इसके नीरव चेहरे पर अन्धकार की घनी कालिमा पुती हुई थी। मैंने लालटेन को जला दिया। इसके धीमे प्रकाश ने धीरे से मुझसे कहा...किसी स्वार्थ के कारण मानव ज़िन्दा रहता है। अपना-पराया यह भी स्वार्थ है। स्वार्थ, स्वार्थ...स्वार्थ, हाँ, स्वार्थ ही मानव जीवन की परिभाषा है। मैं ऐसी बातों को सोच कर अपने को परेशान नहीं करना चाहती हूँ। प्रकाश से तो अन्धकार ही अच्छा था। मैं लालटेन को बुझा देना चाहती थी पर मेरे हाथ उस ओर बढ़ नहीं पा रहे थे। प्रकाश की हत्या करने में मैं असमर्थ रही। मरने से मर कर जीना अच्छा है। इससे जी कर जीने की आशा पलती रहती है। वरना मैं क्यों ज़िन्दा हूँ ? समाज में मेरी हत्या कब की हो गयी। इसके शिकंजे मेरे गले में बहुत पहले पड़ चुके हैं फिर भी मैं जी रही हूँ और जीने के लिए संघर्ष कर रही हूँ। हार कर भी जीतने की चेष्टा कर रही हूँ। यह मैं ऐसे ही सोचती हूँ। मैं जानती हूँ कि मैं एक विधवा

हूँ, मेरी जीत भी हार में बदल जायेगी। जीवन पाने का संघर्ष और जीते रहने का संघर्ष सदा चलता रहेगा। पर यही मेरा जीवन हो गया है। सच कहा जाये तो जीवन की उदासीनता इससे कट भी जाती है। मैं प्रकाश को चाहती हूँ। मैं जीना चाहती हूँ। मुझे भूख लगने लगी। बग़ल के कमरे से आवाज़ आ रही थी। यह तो भैया की आवाज़ है। उस कमरे में एक उल्लास था। पति-पत्नी की मुस्कराहट छन कर मेरे एकाकी कमरे में आ रही थी। मुझे खाने को कोई क्यों पूछेगा? मैं तो इस परिवार के लिए एक मज़दूर की तरह हूँ जो कमा कर लाता है और इन्हें समर्पण कर देता है। अब मुझे पछतावा हो रहा था कि रामलालजी के यहाँ केवल चाय ही क्यों पीकर आयी, मुझे जलेबी, पूरी सब खानी चाहिए थी। भूख बढ़ती गयी। भूख के मारे कै भी होने लगी। मैंने बैग से लौंग के दो फूल खा लिये। मुँह सूखने लगा। जी भर कर पानी पी लिया। खिड़की खुली रह गयी थी। ठंडी हिमाली हवा कमरे में आने लगी। खिड़की बन्द करने की इच्छा न हुई। यह भी तो एक जीवन है। जिस जीवन में संघर्ष नहीं, उतार-चढ़ाव नहीं वह भी क्या ज़िन्दगी! हाँ, यह भी सत्य है कि सुख-दुख से लोग घबरा जाते हैं, बेचैन हो जाते हैं और सोचने भी लग जाते हैं कि ऐसे जीवन से मृत्यु भली। परन्तु मुझे तो इन सबके बिना जीवन ऐसा लगता है जैसे खिड़कियों के बिना एक महल। लोग जो भी कहें, मुझे तो समतल भूमि जैसे जीवन की अपेक्षा ऊँची-नीची पहाड़ियों में बसी बस्तियों का-सा जीवन भला लगता है। पता नहीं क्यों मैं उगते हुए सूर्य की बजाय ढलते हुए सूर्य में रम जाती हूँ। जीने के संघर्ष से डर कर भी मरने की अपेक्षा संघर्ष करते हुए मर जाना अच्छा लगता है। यह मुझे क्या हो गया है? मरने-जीने की बात में अपने को उलझता देख कर मैं अवाक् रह गयी। यह मैं दार्शनिक कब से हो गयी हूँ! जीवन से दूर जाने की कोशिश मैं क्यों करने लगी हूँ? अच्छा हुआ भैया आ गये वरना इसमें भी लोग मुझे ही दोषी बताते। भाभी तो कह भी देती है कि जब से मैं इस घर में आयी हूँ घर की बर्बादी हो गयी है। उनका कहना है कि इस घर की मुझे क्या परवाह है। मैं कमा कर देती हूँ फिर भी मैं घर और परिवार की परवाह नहीं

करती हूँ। मुझे तो परवाह करनी भी नहीं चाहिए। न तो यह मेरा घर है और न ही परिवार। मेरे घर और परिवार की अस्थियाँ तो कब की निकल चुकी हैं। रामलालजी मेरा घर और परिवार बनाना चाहते हैं। नहीं। नहीं। यह कुछ नहीं बल्कि मुझे विक्षिप्त बनाने का एक चक्कर है, एक षडयन्त्र है। मुझे अपने से भय लगने लगा। अपने जीवन से त्रास होने लगा। लालटेन का प्रकाश कम होता गया। देखते ही देखते दो बार फक-फक भी कर दी परन्तु फिर भी चलता ही रहा। उसकी बुझ जाने की कोशिश बेकार गयी। आँधी के बीच दीपक का जलना ही जीवन है। जीवन के प्रति मन में मोह पैदा हो गया।

जीने की इच्छा नहीं, मृत्यु से भय लगता है। हाँ, मुझे मृत्यु से भय लगता है। इसलिए तो मरना चाह कर भी मर नहीं पाती। एक दिन की बात है, रामलालजी छोटी-सी बात पर नाराज़ होकर चले गये। उस दिन मुझे इतनी चोट लगी कि मैंने मरने का निर्णय कर लिया। उस दिन ज्याडलाखेल चिड़ियाघर में गयी क्योंकि रामलालजी के घर से नज़दीक था। शायद उन्हें दिखाने के लिए कि उनके नाराज़ होने पर मैं मर गयी हूँ। मैं पोखरी की ओर बढ़ने लगी। मैं यहाँ से बच कर नहीं निकल सकती। यहाँ निश्चित रूप से मर सकूँगी। पानी पर एक दृष्टि डाली। पानी मेरी ओर देख कर हँस रहा था। शायद उसको भूख लगी थी। वह मुझे अपने गर्भ में समा जाने के लिए फुसलाने लगा। धरती से पानी के अन्दर जाती हुई सीढ़ियाँ मेरा स्वागत करने लगीं। शायद पानी मुझे अपने गर्भ में ले ले, यह सोच कर मैंने आँखें मूँद लीं। पानी मुझे अपने गर्भ में लेने से कतरा गया। मैंने आँखें खोल दीं। मेरी आँखों ने पानी में दो अन्य आँखों को पा लिया। यह आँखें मेरी नहीं थीं पर पहचानी हुई थीं...रामलालजी की आँखें कभी गुस्से में, कभी बेचैन होकर, कभी मुस्करा कर और कभी बेताब होकर मुझे घूर रही थीं। मैं सँभल गयी। मैं वहाँ से भाग कर बस में आकर चढ़ गयी।

रात गहरी होती गयी पर नींद आँखों से कोसों दूर थी। हाँ, अब तो रामलालजी ने मुझ से शादी करने की इच्छा प्रकट की है। यह एक ऐसी शादी है जो मेरे और उनके चाहने पर भी नहीं हो सकती है।

रामलालजी मुझसे स्नेह करते हैं। उन्होंने मुझसे हमेशा हमदर्दी की है। सचमुच कहा जाये तो उन्होंने ही मुझे काम दिलाया है। उनकी हमदर्दी मेरे साथ सदा रहेगी। अगर मैं मर जाऊँ तो उन्हें चोट लगेगी। मुझे उनके लिए भी ज़िन्दा रहना होगा। मुझे रामलालजी के मन को रखने के लिए ज़िन्दा रहना होगा। मैं उनका दिल नहीं तोड़ सकती...।

मुझे डर लगने लगा कि कुछ क्षण के लिए मेरे विचारों में आयी मृत्यु-कल्पना साकार होकर खुली खिड़की से अन्दर न आ जाये। मैं तत्काल उठ पड़ी। हड़बड़ा कर खिड़की को बन्द कर दिया। अब तो मृत्यु चाह कर भी नहीं आ सकती। मुझे मरने की इच्छा होने पर भी नहीं मरूँगी। मैं एक विश्वास से सोने का प्रयत्न करने लगी। आँखें भी बोझिल होती गयीं। कमरे में चारों ओर रामलालजी की आँखें बिखर कर मुझे सो जाने को कहने लगीं। नींद का संसार मुझे चुम्बक की तरह अपनी गोद में खींचता ले गया। रामलालजी की आँखों का जादू मुझ पर चढ़ गया। उनकी आँखों ने मेरी आँखों को ढक लिया।

...एकाएक मेरी साँसें फूलने लगीं। खिड़की खोल कर मैं आँगन में उतर गयी। धीरे-धीरे चलती हुई नदी के किनारे पर पहुँच गयी। नदी का पानी ठंडा था। जी भर कर नहा लिया। सुनसान पथ...मेरे पग रुकने को नहीं मानते थे। इन्हीं विचारों में टुँडिखेल में पहुँच गयी। घंटा-घर दिन-भर सोकर रात को काठमांडू का पहरा दे रहा था। वान्द्र बजने की ध्वनि वातावरण में गूँज पड़ी। रत्न पार्क के बार-बार बुलाने पर मैं अन्दर चली गयी। फूलों को मेरा हस्तक्षेप अच्छा नहीं लगा। लैम्प-पोस्ट की बत्तियाँ धीमी-धीमी चाल में थिरक रही थीं। वहाँ कोई कुछ कहने वाला नहीं था। मैं स्वतन्त्र थी। वहाँ कोई देखने वाला नहीं था जो चाहूँ कह सकती थी, कर सकती थीं। मैंने सारे वस्त्र उतार दिये। बालों को खोल दिया। मैं यन्त्रवत् चिल्ला पड़ी—मैं किचकन्या...मैं किचकन्या! रत्न पार्क ने मुझे अपनी गोद से बाहर ढकेल दिया। पर मैं रुकना नहीं चाहती थी, मैं चलती रही और नदी के किनारे पहुँच गयी। नदी का पानी मेरा रूप देख कर डर गया और खीझ कर मुझसे दूर भागने लगा। आखिर एक पुल पर पहुँची। सोये हुए पुल को मैंनें जगाना

चाहा परन्तु मुझे ही नींद आने लगी। मैंने पुल को जल्दी से पार किया। पुल के नीचे कुछ लोग एक लाश को जलाने की तैयारी कर रहे थे। उनमें से एक ने मुझे देख लिया और वातावरण 'किचकन्या' के भयभीत स्वर से भर गया। सब जान बचा कर भाग गये। मुझे हँसी आ गयी। इनको मृत्यु से डर नहीं लगता पर जीवन से भय खाकर भागते हैं। मैं लाश के पास चली गयी। खोल कर देखती क्या हूँ कि वह तो रामलाल जी की लाश है। बेचारा रामलाल यूँ ही मर गया। मुझे उनके प्रति दया आ गयी। स्नेह के भावों ने मुझे घेर लिया। प्रेम से मैंने उनके बालों को थपथपाया। अनजाने में मैंने उनके होंठों को चूम लिया। मेरे मुँह में खून भर गया। रामलालजी का खून कितना स्वादिष्ट है! मैं चूसने लगी। एक मानव का खून, एक मर्द का खून...!

डर के मारे मैं चिल्ला पड़ी। मेरी नींद एकाएक खुल गयी। मेरा सारा शरीर पसीने से लथपथ था। मैंने अपने मुँह में हाथ डाला। वहाँ कुछ नहीं था। किसी का खून नहीं था। रामलालजी का खून नहीं था। मैंने संतोष की साँस ली। परन्तु कमरे में एक आवाज़ गूँजने लगी—

'जीने की तमन्ना खो चुकी हूँ, मरने से भय लगता है। मरने का इरादा नहीं पर जीना नहीं चाहती।'

अपने जीवन को आफिस की फाइलों में पलता देख कर मैं हैरान हो जाती हूँ। तबियत ठीक न होने पर भी मैं आफिस जा रही थी। वहाँ बैठी फाइल देख रही थी पर मन साथ नहीं दे रहा था। आखिर विवश होकर मैनेजर से छुट्टी माँग कर घर आने के लिए बस-स्टाप की ओर चल पड़ी। घर जाने की भी इच्छा नहीं हो रही थी। एक छुट्टी जो शनिवार की होती है उसको भी घर पर गुजारना मुश्किल हो जाता है। लोग छुट्टी चाहते हैं। परन्तु मुझे छुट्टी से नफ़रत है। घर न आऊँ तो क्या करूँ। आफिस लौट जाने की सोचते लगी। मैं असमंजस में पड़ गयी। पाटन की बस के पहुँचते ही मेरा दिल घबराने लगा। उसी समय फुटपाथ पर भीख माँगते हुए एक लड़के पर मेरी नजर अटक गयी। उस बच्चे के मायूस चेहरे पर मुझे गंगालाल की झलक दिखने लगी। गंगालाल की याद ने मेरी स्मृति को अतीत की ओर ढकेल दिया। सौतेली माँ के

चक्कर में पड़ कर मेरी शादी एक विधुर से हो गयी थी। मेरे पति मुझसे बहुत प्यार करते थे। परिवार वाले भी मुझसे खुश थे क्योंकि मै एक बड़े साहूकार की लड़की थी। उस दिन तो मैं बेहद खुश थी जब मुझे पता चला कि मैं माँ बनने वाली हूँ। पर भाग्य को तो कुछ और ही मंजूर था। मेरी खुशी क्षणिक रह गयी। मेरे जीवन को मुझसे ईर्ष्या हो गयी। महीने गुज़रते गये। मेरी काम करने की शक्ति क्षीण होती गयी। पति की फिर से शराब पीने और रात-रात-भर बाहर रहने की आदत पुनः शुरू हो गयी। परिवार वाले भी अब मुझसे खुश नहीं थे। एक दिन वह शराब के नशे में धुत्त होकर आये। मैंने उनमे कहा कि आपको शराब नहीं पीनी चाहिए, रातों को बाहर नहीं रहना चाहिए तो उन्हें गुस्सा चढ़ गया और इतना मारा कि मुझे तुरन्त ही उस गाँव से काठमाँडू के अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। मुझे देखने केवल मेरे पिता ही आये। सबसे मेरा रिश्ता टूट गया। अस्पताल में ही गंगालाल का जन्म हुआ। अच्छी होने पर पिताजी मुझे अपने घर ले गये। पति का घर मुझ से दूर होता गया। कुछ वर्षों के वाद गंगालाल को भी उसके पिता के घर वाले छीन कर ले गये। उन्होंने दूसरी शादी कर ली और उसी क्षण मेरे लिए पति का घर सदा के लिए पराया हो गया। मैं भूल गयी कि मैं किसी की पत्नी हूँ, मैं किसी की माँ हूँ, मेरा गंगालाल अपना होकर भी पराया होता चला गया, पास होकर भी दूर होता गया।

हवा के झोंकों ने मेरे बदन को झकझोर दिया। बस आ गयी थी। जब घर पहुँची तो मुझे होश आया। मैं कैसे पहुँच गयी मुझे कुछ पता नहीं। नानाजी नरम होती जा रही धूप में बैठे थे। मैं उनसे बातें किये बिना अपने कमरे में चली गयी। मुझे बहुत तेज़ बुखार चढ़ गया। फिर भी गंगालाल की याद में मेरी छाती फटने लगी। पुत्र की याद में बेचैन माँ का हृदय कराह उठा...गंगालाल...मेरा लाल...मेरा नागमणि...!

मुझे चक्कर आ गया। मेरे हाथ-पाँव ढीले पड़ गये और मैं बेजान होकर पलंग पर लुढ़क गयी। मेरा शरीर सुन्न हो गया। मुझमें बोलने की शक्ति नहीं रह गयी थी। भाईसाहब दशरथ को पढ़ा रहे थे। मेरी किसी को फिक्र नहीं थी। मुझे किसी से फिक्र करवाने की ज़रूरत भी क्या है!

मुझे अपने पर गुस्सा आ गया। मुझे अपनी तबियत पर, अपनी बीमारी पर और तबियत खराब होने पर भी आफिस जाने वाली तिमिला पर गुस्सा आ गया। क्रोध से मैं पागल होती चली गयी। मुझसे मेरी अव-हेलना हो गयी। मैं अपने से आजिज़ हो गयी। मुझे भय लगने लगा। क्या ऐसी मनोदशा और शरीर से अब मैं आफिस जा पाऊँगी? अगर न जा सकूँगी तो क्या हुआ? जाने की आवश्यकता ही क्या है? कौन मुझसे ज़बरदस्ती कर सकता है? अब से उस आफिस में न जाना ही अच्छा है। अगर रामलालजी ने फोन किया तो उनको मेरा वहाँ न रहना अच्छा नहीं लगेगा। उनको मेरा आफिस न जाना खटकेगा और शायद वे यहाँ आ जायें। मन में एक गुदगुदी पैदा हो गयी। रामलालजी मुझे देखने के लिए यहाँ आयेंगे! नहीं। यहाँ नहीं आयेंगे। वह क्यों आयेंगे? क्या अब यहाँ आने को उनकी हिम्मत होगी? पहले तो भैया कोई बहाना बना कर भी मुझे देखने आते थे। बिना किसी काम के आफिस में भी फोन करते थे। मेरे शरीर का तापमान बढ़ता गया। ऐसा महसूस होने लगा कि मेरे शरीर और विचारों को पक्षाघात हो गया है। ऐसा लगता था कि किसी चीज़ ने आकर आँखों को थपथपाना शुरू कर दिया है और तब मुझे नींद आ गयी—अचानक दिन के तीसरे पहर में।

जब मेरी नींद खुली तो रात का अंधेरा कमरे में छा चुका था। अब तबियत ठीक थी, शरीर के सब अंगों में हल्कापन छाया हुआ था। फिर भी बिस्तर से उठने की इच्छा नहीं हुई। लगता था कि कोई मुझे कहीं उठाये ले जा रहा है। मैं बिल्कुल ठीक हो गयी थी। मेरे मन में एक अजीब-सी शांति और संतोष घर कर गया था।

—बुआ, आज आप कितनी गहरी नींद में सो गयी थीं!

दशरथ के इन शब्दों ने मुझे एक बार झकझोर दिया। तब मुझे पता चला कि कमरे में मेरे और रात के अँधेरे के अलावा दशरथ भी था। वह मुझे बहुत चाहता है।

—पिताजी ने आपको बहुत बार पुकारा। आप तो उठ ही नहीं रही थीं।

मैं क्या जवाब देती! चुपचाप दशरथ की बातें सुनती रही।

—पिताजी ने कहा था कि आपको बुखार चढ़ा हुआ है और आपके उठते ही उनको बुलाने के लिए कह गये थे। बुआ, मैं पिताजी को बुला लाता हूँ।

मेरे कहने के बावजूद भी कि 'मुझे कुछ नहीं हुआ' दशरथ चला गया। मुझे यह कहने की क्या ज़रूरत थी ? मैं किसी को अपने लिए कष्ट नहीं देना चाहती।...भैया को मेरा कितना खयाल है ! नहीं...नहीं, यह भावना उनकी मेरे प्रति ममता का प्रतीक नहीं वल्कि स्वार्थ का है। दुधारू गाय की लात को भी सहा जाता है। जब वह दूध न दे तो कसाई को देने वाले लोग ममता और स्नेह को क्या जानें ! मैं कमाती हूँ और उनके परिवार का खर्च चलाती हूँ तो मेरा वे खयाल न करेंगे तो कौन करेगा ?

भाभी चाय लेकर आयी।

—क्या हम इतने पराये हैं ? अगर तबीयत खराब है तो एक बार कह तो सकती थीं। नहीं तो दशरथ को ही बुला लिया होता।

चाय को एक ओर रख कर भाभी ने अपने हाथों को मेरे सिर पर फेरा। हाथ कितना ठण्डा था ! स्वार्थ की बू प्रत्येक स्पर्श से आ रही थी। मुझे नीरवता भंग करने की इच्छा न हुई। मैंने उनसे कुछ न कहा।

—तुम्हें तो ज्वर आ रहा है। एक-दो दिन आफिस मत जाना। दिन को तो तुम्हारे भैया डर गये थे। जब हम लोग आये तो तुम नींद में बड़बड़ा रहीं थीं।

वाह रे माया ! मैं बुखार से बेहोश पड़ी थी फिर भी इन्होंने डाक्टर को न बुलाया। कितना खयाल है इनको मेरी सेहत का और अब आयी हैं चाय लेकर—एक छलावा, एक ढकोसला ! स्वार्थी मानव का एक तमाशा ! ये सोचती होंगी कि मैं इतना भी न जान पाऊँगी। एक बार तो मन हुआ कि चाय लेकर खिड़की से फेंक दूं और भाभी को अच्छी तरह झिड़क दूं। पर...मेरा इनके सिवाय कौन है...कुछ भी हो आखिर तो मुझे इनकी छाया में गुज़ारा करना है।

—नहीं भाभी, मुझे कुछ नहीं हुआ है। काम करते-करते एकाएक सिर में दर्द होने लगा और आज काम करने की इच्छा भी न थी।

इसलिए तबीयत खराब होने का बहाना बना कर चली ग्रायी। ग्रब तो ठीक है।

भाभी ने कुछ न कहा। स्वार्थी मानव कह भी क्या सकता था? स्वार्थ पूरा होते ही ममता खत्म। मैं ठीक हूँ, यह सुन कर उनका काम बन गया। कमरे से बाहर चली गयी। ग्रगर एक बार लालटेन जला देती तो क्या हो जाता? हे भगवान्! ऐसे स्वार्थी लोगों के बीच कब तक रहना पड़ेगा? ग्राँखें खुली होने के कारण दशरथ को ग्रन्दर ग्राते मैंने देख लिया परन्तु भैया साथ नहीं थे। शायद सो गये होंगे। उनकी ग्रादत बहुत जल्दी सोने की है। नहीं, नहीं, उन्हें भाभी ने रोक दिया होगा। ग्रौर नानाजी? उनको क्या पता होगा कि मेरी तबीयत ख़राब है। उनकी ग्रपनी ही तबीयत कभी ग्रच्छी नहीं रही। यह घर मेरा ग्रपना नहीं है। पर उनका तो ग्रपना घर होते हुए भी पराया हो गया। जैसी मैं, वैसे वह। मैं कमाती हूँ इसलिए कभी-कभी स्वार्थ से पूर्ण कुछ ग्रपनापन मिल जाता है। पर नानाजी को...मुझे उनके पास जाने की प्रबल इच्छा हुई। उसी समय दशरथ ग्रा गया। भैया सो गये हैं। दशरथ चुपचाप ग्राकर मेरे साथ बिस्तर पर बैठ गया।...इस घर में यही एक है जो मुझसे प्यार करता है। दशरथ...गंगालाल...। नहीं, नहीं, मुझे इस तरह विचार नहीं करना चाहिए। मेरी मनहूस छाया इन पर नहीं पड़नी चाहिए। रेत की छाया इन कलियों पर पड़ने से ये खिलने से पहले ही मुरझा जायेंगी। मैं हँस पड़ी। दशरथ शायद डर गया। बुग्रा-बुग्रा कहते हुए वह मेरी बग़ल में लेट गया। जब मैंने कुछ नहीं कहा तो वह डर से मुझसे दूर खिसकने की कोशिश करने लगा। दशरथ को मेरे से ग्रौर ग्रन्धकार दोनों से डर लगने लगा। वह बड़ी दुविधा में पड़ गया। उसके प्रति मेरे मन में ममता उमड़ पड़ी। मैंने दशरथ को ग्रपनी ग्रोर खींच कर कस कर बाहों में लपेट लिया। मेरे ग्रन्दर, माँ के हृदय में एक तूफान ग्रा गया। मैं ग्रपने को सम्भाल कर बैठ गयी। मैंने लालटेन जलायी। रोशनी से कमरा जगमगा उठा। दशरथ का चेहरा खिल गया। पर मेरे मन में एक टीस उठी। मेरे जीवन के ग्रठाईस साल बीत चुके थे। समय का इस तरह बीत जाना किसी को याद नहीं रहता। मेरे मन में एक

अजीब-सी मायूसी छा गयी। न चाहते हुए भी मैं उदासीन हो गयी। बिस्तर पर फिर लेट गयी।

कमरे में प्रकाश होने के कारण दशरथ का सिकुड़ता हुआ चेहरा फैल गया। अब वह दीवार पर लगे कैलेन्डर को उतार कर खेलने लगा था। बार-बार मुझसे पूछता था—बुआ, इसको मैं फाड़ लूँ ?

—इसकी तुम्हें क्या ज़रूरत है ?

—किताब पर जिल्द चढ़ाने के लिए।

दशरथ के मन में शायद आशंका हुई। उसको निराश करने का साहस मुझ में नहीं था। मेरे मुँह से अनायास निकल पड़ा—

—तुम्हें जो पसन्द है वह ले सकते हो। जो महीना चल रहा था दशरथ ने उसको ही फाड़ लिया। मैंने कुछ नहीं कहा। उसके चेहरे में प्रसन्नता की झलक देख कर मैंने जीवन को पा लिया। जीवन जीने के लिए है, मरने के लिए नहीं। जीवन एक मज़े की चीज है। जीवित जीवन को देख कर कितना आनन्द मिलता है ! दशरथ ने एक और कागज़ फाड़ा और किताब पर जिल्द चढ़ायी। फिर उसने एक-एक को फाड़ कर उससे बन्दूक, नाव और हवाई जहाज़ बनाया। एक ओर मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था तो दूसरी ओर दशरथ के बेपरवाह जीवन को देख कर मुझे ईर्ष्या हुई। मैंने फिर भी उसको कुछ नहीं कहा। एक बार मेरी ओर देख कर वह मुस्करा पड़ा। मैंने भी अपने होंठों पर मुस्कराहट फैला दी। कागज़ के सारे खिलौनों को उसने एक जगह रखा। फिर उसके मन में पता नहीं क्या आया और खिड़की पर जाकर 'हुई' कह कर सब को फेंक दिया। मैंने आँखें बन्द कर लीं। उसने एक-दो बार बुलाया और फिर 'माँ, माँ' कह कर अपने भय को भगाते हुए अपने कमरे में चला गया।

दशरथ मेरे कमरे में, मन में और जीवन में प्रकाश की एक लकीर खींच गया। जीने की इच्छा मुझ में पलने लगी। मैंने आँखें खोल दीं। कमरे के चारों ओर जीवन की ममता में फँसी नज़र को घुमाया। पता नहीं किस ज़माने की देवताओं की तसवीर एक ओर लटकी हुई थी। दरवाज़े के दायीं ओर एक काठ का बड़ा सन्दूक पड़ा था। वह भाभी के

दहेज में मिला था। उसके ऊपर एक वर्तन रखा हुआ था। पता नहीं उसमें भी मेरे जीवन की तरह पानी है या नहीं। बासा पानी भी हो सकता है क्योंकि मैं तो रोज़ नल से पानी लाना भी भूल जाती हूँ। मेरी नज़र दराज़ पर रुक गयी। मेरी आँखों ने इसे खोल कर देखा। सबसे ऊपर के खाने में मेरे कपड़े और कालेज-जीवन की यादों के रूप में मेरी कुछ किताबें और नोट्स पड़े थे। कैलेंडर के खाली स्थान ने मेरे खाली जीवन पर व्यंग्य किया। इसके सिवाय मेरे कमरे में और कुछ नहीं है। यही मेरा संसार है। कमरे के अन्दर घुसते ही बन्धन में पड़ने वाला मेरा जीवन। मुझे मालूम है कि जीवन से बँधे रहने की कला को जाना आवश्यक है। झड़ने से पहले फूलों को भी खिल कर रहना पड़ता है। मेरी भी इच्छा होती है कि कमरे को साफ रखूँ। मैं रख भी सकती हूँ। पर मेरे सामने एक प्रश्न खड़ा हो जाता है कि मैं किसके लिए कमरे को साफ रखूँ। कमरे को साफ रखने पर उसकी तारीफ़ करने और खुश होने वाला ही जब नहीं है तो साफ करो या उसे सजाओ या कबाड़खाना बना कर रखने में फर्क ही क्या पड़ता है! और फिर यह कमरा मेरा नहीं है। न जाने कब इसे छोड़ कर मुझे जाना पड़े। नाना किसी समय भी चल बस सकते हैं। उनकी मृत्यु के साथ ही इस घर से मेरा नाता टूट सकता है। भाभी तो मुझे चाहती ही नहीं। भाईसाहब का तो कोई अस्तित्व ही नहीं है। दशरथ वह भी तो मुझे भूल जायेगा। तब मैं किसके लिए कुछ करूँ? मेरा जीवन कब तक इस तरह चलता रहेगा? चलते-चलते ढल जाऊँ तो अच्छा है, परन्तु डर लगता है। मुझे कहीं मेरा जीवन रुक कर ढलना अच्छा नहीं लगता। मुझे रुक कर जीना भी नहीं जँचता। चलते रहने पर जीवन खत्म हो जाता है। फिर भी मुझे चलते जीवन की लालसा है। पर मैं क्या सोचने लगी! बेकार की बातों में क्यों उलझ पड़ी हूँ? जिस घर में रहती हूँ उसके सदस्यों के विषय में ऐसा नहीं सोचना चाहिए। मैं कितनी स्वार्थी हूँ! केवल अपना ही सोचती हूँ। ताक़त साथ नहीं दे रही थी। मैं लेटे-लेटे विचारों के प्रवाह में वहते-बहते तंग आ गयी। फिर भी मैं किसी तरह बैठ गयी। गले को प्यास ने गुदगुदाया। दीवार के सहारे चल कर सन्दूक के ऊपर रखा हुआ वर्तन

उठाया पर उसमें पानी था। मेरे शरीर को एक झटका लगा। बर्तन मेरे हाथों से छूट गया और ज़मीन पर एक ओर लुढ़क गया। शायद मेरा जीवन भी एक दिन इसी तरह लुढ़क जायेगा। कमा कर देती हूँ तो यह हालत है और जिस दिन कमाना बन्द हो जाये तो मेरी जिन्दगी कुत्ते की मौत से भी गिर जायेगी। ये लोग मुझे खाने के लिए भी नहीं पूछते। क्या ज़माना आ गया है! खाने की याद ने भूख की ज्वाला को बढ़ा दिया। अग़ल-बग़ल किसी कमरे से आवाज़ नहीं आ रही थी। कुछ देर बाद भाभी ने धीरे से दरवाज़े से झाँका। 'सचमुच सो गयी है' कह कर दरवाज़े को धीमे से बन्द करके चली गयी। मैं क्या कहती? कहने से सुनता भी कौन? जिस दिन से मैं आयी हूँ भाभी तो हमेशा ही मुझ से नाराज़ रहती है। मैं इन पर एक भार बन गयी हूँ। मुझे याद है, भाईसाहब और भाभी एक दिन मेरे विषय में बातें कर रहे थे। आफिस से आने में मुझे कुछ देर हो गयी थी। इसी पर भाभी कहने लगी, जवान लड़की को घर में रखना तो सर्प को दूध पिलाना है। इसके बाद भाभी ने अपने वड़े भाई, जो किसी होटल में काम करता था और जिसकी बीवी मर चुकी थी, के साथ मेरी शादी का प्रस्ताव रखा। मैं भाभी के बड़े भाई को जानती थी। वह घर में आता रहता था। भाभी और भैया जान-बूझ कर हम दोनों को अकेला छोड़ जाते थे। कभी गाँव के किसी घर में कथा सुनने चले जाते और कभी शहर चले जाते थे। उन दिनों भाभी मेरी बहुत इज्ज़त करती थी क्योंकि उनके भाईसाहब ने मेरी शादी उनके साथ करवा देने पर कुछ ज़मीन देने की बात पक्की कर रही थी। यह शादी मेरे न चाहने पर भी होकर रहती। बकरे को कसाई के हाथों में सौंपने की बात पक्की हो गयी थी। पर तक़दीर में कुछ और ही लिखा था। भाईसाहब को मस्तिष्क का रोग हो गया। मैंने नौकरी कर ली। दूध देने वाली गाय को कोई बेचना नहीं चाहता। संकट टल गया। मैं अपने पिता की उम्र के पुरुष की पत्नी बनने से बच गयी। उस पुरुष के विचार से मैं इस समय भी घबरा गयी। अपनी सारी शक्ति लगा कर धीरे-धीरे दरवाज़े तक गयी और चिटकनी लगा दी। बिस्तर पर पहुँच कर लेटने ही वाली थी कि दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ आयी।

—तुम्हारे लिए खाना लायी हूँ।

भाभी की ग्रावाज़ 'की-होल' से कमरे के ग्रन्दर सुनायी दी। खाना मेरे सामने रख कर पानी का बर्तन लेकर बाहर चली गयी। गर्म पानी मेरे सामने रख कर कहने लगी—

—तुम सो रही थीं इसलिए खाना लाने में देर हो गयी। ग्रब तबीयत कैसी है ?

—ग्रच्छी है। ग्रापको कष्ट देना पड़ा। मुझे चलने से चक्कर ग्रा जाता है, नहीं तो मैं ही खाने के लिए ग्रा जाती।

—ग्रच्छा ग्रब खाग्रो। कुछ दिनों के लिए ग्राफिस मत जाना। इस तरह तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा। तुम्हीं एक के सहारे ही सारा परिवार चल रहा है।

भाभी चली गयी। मेरी ग्राँखों में हर्ष के ग्राँसू छलछला ग्राये। मैंने जी भर कर खाया। इन शब्दों को सुन कर मुझे तृप्ति मिली। पर यह क्या ? लालटेन की ज्योति क्षीण होती चली गयी। खोल कर देखा मिट्टी का तेल भरा पड़ा था। बाती को बढ़ाया। लालटेन बुझ गयी। बाती खत्म हो चुकी थी। तेल के होने पर भी बाती खत्म होने के कारण लालटेन बुझ गयी। मेरा जीवन भी बिना बाती का दीप है। जो दीप जल नहीं सकता उसका क्या मूल्य ? मेरे जीवन का कोई मूल्य नहीं। सचमुच मेरा जीवन बेकार है। मेरे मन में तीव्र वेदना ने हलचल मचा दी। मैं बच्चों की तरह रो पड़ी। मेरा रोना भी कोई नहीं सुनता। जीवन में रोना बेकार है। जिसका ग्रपना कोई नहीं, उसके लिए रोना भी बेकार है।

मैं उठ कर खिड़की पर चली गयी। ठंड भरी हिमाली रात में वातावरण गुमसुम पड़ा था। जिधर देखो एक ग्रजीब-सी शान्ति छायी हुई थी। पर मेरी ग्राँखें फैलती गयीं। दूर पहाड़ी पर एक टिमटिमाती ज्योति लुप्त हो गयी। ग्राँगन में ग्रमरूद का पेड़ निश्चल खड़ा होकर घर की रखवाली कर रहा था। ग्रमरूद का यह पेड़ जब तक फल देगा वहाँ खड़ा रहेगा फिर लोग इसे काट देंगे ग्रौर सुखा कर जला देंगे। शायद मेरा भी ऐसा ही ग्रन्त होगा। बात-बात में भावुक हो जाने से मैं स्वयं

हैरान हो गयी ! भावना में बहने से जीवन नहीं बनता । भावना तो मानव को जीवन से ठग लेती है, घाटे में रख देती है।

किसी के ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाने पर मैं जाग गयी। सवेरे का एक पहर बीत चुका था। मैंने हड़बड़ा कर दरवाज़ा खोला। दशरथ चाय लिये खड़ा था। वह चाय देकर चला गया। पर मेरा सपना बेतुका था :

...नदी के किनारे एक नारी अनमनी-सी होकर ताड़ के वृक्ष की तरह खड़ी है। उसका चेहरा दिखायी नहीं दे रहा। परन्तु पीछे से कहा जा सकता है कि वह एक युवती है। उसने हल्के गुलाबी रंग की साड़ी और काला ब्लाउज़ पहन रखा है। उसकी लम्बी काली चोटी कमर पर लटक रही थी। वह गम्भीर विचारों में खोयी हुई थी। नदी अपने ही संगीत में नाचती हुई उसे छूने की कोशिश करती है और लौट जाती है। जैसे-जैसे आकाश का चेहरा अंधकार से लिपटता जा रहा था, नदी की चौड़ाई फैलती चली गयी। नारी के शरीर में हल्का-सा कंपन हुआ। उसकी चोटी एक बार मुस्करा पड़ी। वह नदी के पानी की ओर बढ़ी। नदी पीछे हट गयी। नारी ने पानी को छूना चाहा तो पानी फिसल गया। नारी ने उसे पकड़ना चाहा परन्तु नदी भागने लगी। नारी की चाल में गज़ब की तेज़ी आ गयी। नदी सूख गयी। जिधर देखो उधर रेत ही रेत है। फिर भी नारी दौड़ने लगी। पर उसने देखा कि रेत की दरार ने उसका पथ रोक दिया है। उसकी चोटी खुल कर हवा में काली घटा की तरह फैल गयी। उसकी साड़ी और ब्लाउज़ का रंग मटमैली सफ़ेदी में बदल गया। रेत में एक आँधी चली। हार मान कर आवेग में लौट आने के लिए वह मुड़ पड़ी। मैं अपने चेहरे को देख कर चीख पड़ी।

सचमुच मैं रेत की दरार की एक नज़्म हूँ। मेरा जीवन अब रेत ही रेत—दरार ही दरार है। इसमें अब कभी न तो वसन्त आयेगा और न ही बहार। रामलालजी ! वह तो एक छलावा है। रामलालजी के साथ अपने को सोचना भी मेरी भूल है। मनुष्य किस विश्वास में जी

रहा है, किस विश्वास में मर रहा है ? मनुष्य जी रहा है, जीवन मरता जा रहा है !

उस दिन ग्राफिस के 'गेट' पर पहुँची ही थी कि मैनेजर साहब ग्रपनी कार से बाहर निकले । मुझे ग्राज ही देर हो गयी ग्रौर मैनेजर ग्राज ही समय पर ग्राये । क्या होगा इससे, हर रोज़ तो समय पर पहुँच जाती हूँ । मैं ग्रपने कमरे में चली गयी । मैनेजर के बाहर होने पर काम कम हो जाता है । पर काम न होने पर मेरे दिमाग़ में बेकार की बातें ग्रा जाती हैं । बेकार की बातों में उलझना मेरी ग्रादत-सी हो गयी है । पर इन दिनों में ग्रपने विचारों से भी ग्राजिज हो गयी हूँ । ऐसे ही परेशान रहने लगी हूँ । इन विचारों में फँसे रहने पर सिर-दर्द भी होने लगता है । यह सिर-दर्द भी मेरा ग्रभिन्न मित्र बन गया है । ग्रपनी इच्छा के ग्रनुसार कुछ न हुग्रा तो सिरदर्द...सिरदर्द...सिरदर्द...बेचैन हो जाती हूँ । इच्छा होती है कि सिर को काट कर फेंक दूं । ग्राफिस के बाहर धूप में कुर्सी बिछा कर बैठ गयी । वहाँ कोई नहीं था । केवल नीला ग्रासमान ग्रौर धूपभरी धरती । वातावरण रमणीय था । दूर पर्वत-शृंखलाएँ मस्त होकर धूप सेंक रही थीं । एक मधुर सुगन्ध ग्रणु-ग्रणु में व्याप्त थी । स्वयम्भु चैत्य की दिव्य दृष्टि उलझी हुई थी । बग़ल में बहती बागमती धूप के कारण चमक रही थी । मेरी तबीयत ठीक नहीं थी । डाक्टर ग्रौर घरवालों के मना करने पर भी ग्राफिस ग्रा गयी । मुझे घर में रहने की इच्छा नहीं होती । घर के धंधों में मेरा जी नहीं लगता । मेरे भाग्य में गृहस्थी सम्भालना लिखा ही नहीं है । मेरी स्मृति ग्रतीत की गलियों में भटकने लगी ।

मेरे भाग्य में घर चलाना लिखा ही नहीं था । ग्रपने बेटे के बाप से परित्यक्त मुझे एक बार फिर गृहस्थी सम्भालने का सौभाग्य मिला था । हृदय-गति रुक जाने से पिताजी चल बसे । दो बच्चों को छोड़ कर सौतेली

माँ ने दूसरी शादी कर ली। रिश्तेदारों ने मेरी भी दूसरी शादी कर दी। इस बार पति अच्छा मिला। उनका स्वभाव बेहद नम्र था। परन्तु कुछ दिन बाद मुझे पता चला कि मेरी शादी जीवन से नहीं मृत्यु से हुई है। उनका शरीर तपेदिक़ के रोग से जर्जर, खोखला हो चुका था। आखिर एक वर्ष के बाद मेरा भाग्य एक बार फिर मुझसे मुकर गया। वे सदा के लिए मुझे छोड़ कर चले गये। इस तरह अपने बच्चे के बाप के ज़िन्दा रहते हुए भी मैं बेवा हो गयी। पता नहीं मैं क्या करती अगर नानाजी मुझे अपने घर न ले आते। यही है अमूल्य नर जीवन...! अतीत ने मेरे मन को कुरेद दिया। मेरी आँखों में आँसू छलक आये।

फ़ोन की घंटी बजी। पता नहीं क्यों उस दिन ऐसा लगा कि फ़ोन ज़रूरत से अधिक टनटना रहा है। न चाहते हुए भी फ़ोन उठाया। जब तक फ़ोन के नज़दीक पहुँच कर उसे कान पर रखती हूँ तो फ़ोन कट चुका था। मेरा जीवन भी एक दिन इसी तरह कट कर रह जायेगा। मैं अपने कमरे में आकर बैठ गयी। क्या मेरे जीवन का अन्त इसी तरह हो जायेगा ? क्या सचमुच मेरे जीवन में बहार नहीं आयेगी ? मैं जीवन में घुट-घुट कर बौखला चुकी हूँ। क्या फाईलों में उलझ कर ही जीवन गुज़ारना पड़ेगा ? इन पहेलियों को कौन सुलझायेगा ? हे भगवान् ! कौन इन बातों से मुझे बचायेगा ? इतने बड़े संसार में मेरा कोई नहीं है। मेरा पति अब किसी और का पति हो गया है। मैं भी तो किसी दूसरे की पत्नी बन चुकी थी। मेरा बेटा भी अपना होते हुए पराया है। टाइपिस्ट केशरी कुछ पत्र टाईप करके टेबुल पर रख गयी। केशरी हर दम हँसती रहती है। उसके प्रत्येक अंग से हँसी का फव्वारा फूटता है। मुझे उससे ईर्ष्या होने लगी। वह 'प्यून' से लेकर मैनेजर तक चंचल होकर बातें करती हैं। सब उससे बात करना पसन्द करते हैं। सब लोग भँवरे की तरह उसके आस-पास मँडराते रहते हैं। उसको भी बुरा नहीं लगता। उसको तो इसमें मज़ा आता है। सबको रमाये रखना और खुश करना यह उसके जीवन का एक अंग है। मेरे यहाँ तो कोई भूल कर भी नहीं आता। क्योंकि...नहीं-नहीं मुझे ऐसा विचार नहीं करना चाहिये। अगर इनमें उलझ जाऊँ तो परेशानी और बढ़ जायेगी और मेरे जीवन में

केवल हैरानी रह जायेगी। केशरी के भाग्य से मुझे जलन नहीं होनी चाहिए।

फ़ोन की घंटी फिर बजी। इस बार फ़ोन की घंटी पर न तो मुझे आक्रोश हुआ और न ही झुँझलाहट। मैंने फ़ोन उठाया। मैनेजर साहब की आवाज़ पहचान गयी।

—सर, मैं बोल रही हूँ।...आप जब तक नहीं आयेंगे मैं आफिस में ही रहूँगी।...टाइप करवा लूंगी।

केशरी को बुलाने के लिए पियन से कहा। वह प्रसन्न-चित्त चला गया क्योंकि उसको तो केशरी से मज़ाक करने का बहाना मिल गया। सचमुच केशरी में एक अजीब चुम्बक है। कुछ आफ़िसर मैनेजर साहब से मिलने के बहाने इससे गप्प मारने आते हैं। एक दिन की बात है, पियन चाय लेने गया था। कुछ ज़रूरी पत्र टाइप करवाने थे इसलिए मैं ही उसे देने चली गयी। एक आफ़िसर की छेड़छाड़ पर वह टाइपराइटर पर झुक कर हँसती-हंसती निढाल हो रही थी। मैंने उस आफ़िसर को बहुत बार उसके कमरे की ओर जाते देखा था पर उसका केशरी के साथ इतना गहरा मज़ाक चलता है, मुझे पता नहीं था। क्या-क्या टाइप करना है, मैं उसे समझा कर वापिस अपने कमरे में आ गयी। केशरी से मैं सुन्दर हूँ। हर प्रकार से मैं उससे...। नहीं, नहीं, रामलालजी को ऐसी लड़कियाँ अच्छी नहीं लगतीं। सबके साथ हँस कर बात करनेवाली लड़कियों से उन्हें चिढ़ है। उनके विचार में नारी का सबसे बड़ा आभूषण उसकी लज्जा और गाम्भीर्य है। सस्ता माल सब खरीदना चाहते हैं। सस्ती औरत को लोग केवल जी बहलाने का एक खिलौना समझते हैं। क्या केशरी इन बातों को नहीं समझती ? शायद खिलौना बनने में उसको आनन्द आता है। केशरी के विषय में इन बातों को सोचने की मुझे क्या आवश्यवता है ? वह मेरी लगती ही क्या है ? मेरी नज़रों में तो वह केवल एक टाइपिस्ट है, इससे अधिक कुछ नहीं। मन के एक कोने से किसी ने कहा—तिमिला, केशरी से तुम ईर्ष्या करती हो। उसके मस्ती भरे जीवन से तुमको जलन होती है।

फ़ोन की घंटी फिर बज उठी। फ़ोन का होना भी अच्छा नहीं। अगर

ग्राफिस में मनेजर न हो तो मुझे बार-बार जाकर फ़ोन उठाना पड़ता है। मन मार कर मैं चली गयी। फ़ोन सुना तो मेरा मन प्रसन्न हो उठा। मैं रामलालजी की ग्रावाज़ पहचान गयी।

—समय मिले तो ग्राफिस के बाद एक बार घर ग्राना। रामलालजी के इतना कहते ही ग्रनजाने मेरे मुँह से निकल पड़ा—ग्राज काम ग्रधिक है, ग्रा न पाऊँगी। रामलाल ने विना कुछ कहे फ़ोन रख दिया। यह क्या ? मुझे तो कुछ क्षण के लिए काठ मार गया। ग्राखिर इतना गुस्सा क्यों...ग्राने को किसलिए कहा, कुछ बताते भी नहीं ग्रौर गुस्सा हो जाते हैं। मैंने झूठ तो नहीं कहा था। मैनेजर के न ग्राने के कारण मुझे रुकना था। मैं जानती हूँ कि रामलालजी को मेरा नौकरी करना भी पसन्द नहीं। उनकी इच्छा रहती है कि मेरी हँसी व मेरी प्रत्येक चीज़ पर केवल उनका ग्रधिकार रहे परन्तु कह नहीं पाते। रामलालजी तो बुज़दिल हैं। शादी की बात करते हैं परन्तु कहने का ढंग नहीं। इन दिनों रामलालजी मुझसे नाराज़ रहते हैं। पर मैं उनकी कौन हूँ, वे मेरे कौन हैं, जो इस तरह बिना बात पर गुस्सा दिखाते हैं ? हिम्मत है तो मुझे बीवी बना कर घर ले जायें ! ग्रपने ग्राप निर्णय तो कर नहीं सकते ग्रौर गुस्सा मुझ पर उतारते हैं। ग्रगर फिर कभी ऐसा व्यवहार किया तो उनको ऐसा झिड़क दूँगी कि नानी याद ग्रा जाये। मैं उनकी खरीदी हुई दासी नहीं हूँ।

विचारों में खोये रहने के कारण समय जल्दी बीत गया। ग्राफिस के सब लोग धीरे-धीरे घर की ग्रोर चल पड़े। मैं मैनेजर की बाट जोह रही थी। समय पर घर जाना भी नहीं मिलता। ऐसी नौकरी की ऐसी-तैसी ! इससे एक तो मेरा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है ग्रौर रामलालजी को भी ग्रच्छा नहीं लगता। पर भाईसाहब का परिवार तबाह हो जायेगा। भाईसाहब को भी, पता नहीं क्या, रोग हो गया है। ग्रब जीवन-भर कमा नहीं सकते। यह सब विधि का विधान है। नहीं। यह सब मेरे भाग्य का दोष है। हर बार ही जीवन मेरे सामने ग्राकर कट जाता है। शादी दो बार हुई पर फिर भी मैं जीवन कुंग्रारियों की तरह व्यतीत कर रही हूँ। ग्रपने जीवन को ग्राफिस के कामों में खतम कर रही हूँ।

संध्या गहरी होती जा रही थी परन्तु मैनेजर अभी तक नहीं आये थे। मैं क्या करूँ, क्या न करूँ—कुछ न सूझा। इतनी दूर जाना है। वेतन तो मुझे औरों की तरह ही मिलता है परन्तु मुझे आफिस के बाद भी बैठे रहना पड़ता है। तंग आकर भी मैं क्या कर सकती हूँ ! मजबूरी ने मुझे...।

फ़ोन ने मुझे पुकारा। मैनेजर आ नहीं पायेंगे इसलिए घर चली जाने को कहा है। मैं एक मशीन की तरह हूँ। 'ऑन' और 'ऑफ' के इशारे पर रुकना और चलना पड़ता है। मायूस मन लेकर आफिस से निकली।

भाई साहब घर पर थे। खाने के बाद मुझे अपने कमरे में आने के लिए कह गये थे। भाईसाहब को कहीं ग़लतफहमी तो नहीं हुई। देर से आने पर उनके मन में कोई शंका तो नहीं हुई। इन्हीं विचारों में उलझती मैंने खाना खा लिया। इसके बाद सीधे भाईसाहब के कमरे में चली गयी।

—तिमिला, मेरे विचार में तुम आफिस जाना छोड़ दो और अपनी पढ़ाई पूरी कर लो।

मैंने कुछ न कहा। इस बात को कहने की क्या जरूरत पड़ गयी ? क्या सचमुच भाईसाहब को मेरे चरित्र पर संदेह हो गया है ?

—तिमिला, क्या तुमने सुना नहीं ?

—सुन रही हूँ, भाईसाहब !

—मैं जानता हूँ कि तुम कहोगी गुजारा कैसे चलेगा।

मैं एक ओर बैठ गयी। मामला कुछ गम्भीर लगने लगा।

—मैं आफिस छोड़ने को कह रहा हूँ। नौकरी न करो तो मैं कह ही नहीं सकता। इतनी दूर की अपेक्षा गाँव के स्कूल में ही पढ़ाना शुरू कर दो।

मेरे पास कहने को कुछ नहीं रखा था।

—इस तरह बार-बार आफिस से देर से आना अच्छा नहीं। समाज वाले कुछ कह देंगे। बेकार में बात बिगड़ जायेगी। मुफ्त में बदनामी भी सिर पर उठानी पड़ेगी।

—भाईसाहब, क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है ? ऐसा समाचार आपको सुनाने से पहले मैं आत्महत्या कर लूँगी।

आवेश में कह तो गयी पर पीछे मुझे स्वयं संकोच हो गया।

—नहीं, नहीं ! मुझे तुम पर पूरा विश्वास है। पर समाज को देखो। उन लोगों ने विजया के बारे में कितनी अफवाहें फैला रखी हैं ! इतने बड़े घर की बेटी को बदनाम करने से बाज़ नहीं आते और तुम तो...।

—भाई साहब, मैं विजया नहीं तिमिला हूँ। मुझ में और विजया में ज़मीन-आसमान का अन्तर है।

मैं आक्रोश और आवेश में उठ कर अपने कमरे में चली आयी।

—मैं तो भूल ही गया था तिमिला, कि तुमसे मिलने के लिए मोहन-माया आयी थी।

हाँ, अब मैं समझी कि यह सब उत्पात उसी मोहनमाया के कारण ही है। शायद उसने रामलालजी के विषय में कुछ बात कह दी होगी। नहीं तो भाई साहब ऐसी बातें कर नहीं सकते। मेरे कमरे में भाईसाहब और भाभी की आवाजें सुनायी देने लगीं। भाभी भाईसाहब को दुत्कार रहीं थी—आप भी बेकार की बातों में तिमिला को क्या-क्या कह देते हैं ! बेचारी दिन-भर आफिस में हमारे परिवार के लिए ही तो काम करती है। भाईसाहब कुछ न बोले। फिर भी मेरे मन को संतोष हो गया। भाईसाहब ने भी ठीक ही कहा है। इस अधर्मी समाज का क्या विश्वास ? पर मैं क्या करूँ ? मुझे कौन समझायेगा ? मेरी बेताबी और परेशानी कौन दूर करेगा ? मैं घबरा कर कभी बिस्तर पर बैठती, कभी खिड़की पर चली जाती और कभी कमरे में चक्कर लगाने लगती, पर शान्ति कहीं नहीं मिलती थी। कमरे में गहन अंधकार छाया था। मैं लालटेन जलाने के लिए झुकी। शायद उसमें दूसरी बाती नहीं डाली है। बिन बाती का दीप जल नहीं सकता। बिना पुरुष के नारी का जीवन पल नहीं सकता। रामलालजी मुझसे शादी करना चाहते थे। आज मुझे उनके यहाँ जाना चाहिए था। शादी की बात तय कर लेनी चाहिए थी। शायद इसलिए ही मुझसे मिलना चाहते थे। मैं उनसे कल मिलूंगी। कल ही अपने जीवन रूपी दीप की बाती खोज लूंगी और तब मैं सुबह का इन्तज़ार करने लगी। मन ने तो कहा कि पूरब से सूरज उसी समय निकल आये। मैं उनसे मिलने के लिए चंचल हो उठी, विह्वल हो उठी।

रात के अन्तिम पहर में ही मेरी आँख खुल गयीं। आफिस में एक ज़रूरी काम हैं, भाईसाहब से यह कह कर मैं ज्योंही सीढ़ियों से उतरने लगी तो भाभी घड़े में पानी लिये ऊपर चढ़ रही थी।

भाभी की इस बात से मेरे मन को संतोष हुआ। मैं मुस्करा पड़ी। सारी प्रकृति मेरे साथ झूम उठी। अब तो मेरे जीवन में बहार आयेगी। कहीं यह तो नहीं कि उस दिन मेरे न कहने पर किसी और से शादी तय कर ली हो और शादी के भोज में हाथ बटाने के लिए मुझे बुलाया हो! अपने लिए नहीं बल्कि औरों के लिए काम करना ही मेरे भाग्य में लिखा है।

इसी तरह के मानसिक द्वन्द में मैं पाटन पहुंच गयी। आशा और निराशा की दुरभिसंधि में मैं रामलालजी के घर पहुँची। रामलालजी के घर के मुख्य द्वार पर एक बड़ा-सा ताला मुझ पर व्यंग्य कर रहा था।

—आप शायद रामलालजी से मिलने आयीं हैं? लेकिन वह तो आज सवेरे ही अपनी माँ को लेकर हिन्दुस्तान में तीर्थयात्रा के लिए चले गये हैं।

बग़ल के घर से एक बूढ़ी की इस सूचना से मुझ पर वज्रपात हुआ। क्या सोच कर आयी थी क्या हो गया! कितने विश्वास के साथ जीवन पाने के लिए आयी थी और उतने ही विश्वास के साथ खाली हाथ जा रही हूँ। मैं लौट पड़ी। मेरे पैरों ने पुराने रास्ते पर चलने से इनकार कर दिया। मने अनजाने पथ पर अपने पग रख दिये। एक मन्दिर के प्रांगण में पहुँच गयी। वहाँ एक तालाब था। पता नहीं क्यों मुझे उस में कूद कर आत्महत्या करने की इच्छा हुई। तब मैं देखूंगी कि रामलालजी की क्या अवस्था होती है। मुझे परेशान करने का यह एक अच्छा प्रतिशोध होगा। परन्तु सामने का अनेक छतों वाला मंदिर मुझे इस काम से मना कर रहा था। मानव-जीवन की बड़ी महत्ता है। देवता मर जाता है, पर फिर भी मानव ज़िंदा रहता है। इतना ही नहीं मंदिर में देवता की मूर्ति की स्थापना करके देवता को भी ज़िंदा रखा जाता है। इस प्रेरणा से बाहर आकर मेरे पग नये पथ पर चलते रहे। घूम कर देखती क्या हूँ कि मैं फिर रामलालजी के घर के नज़दीक पहुंच गयी हूँ।

मेरे मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। हृदय में एक नया फूल खिल गया।

मेरे जीवन ने अपना पथ बदलना चाहा। इसके लिए निरंतर प्रयत्न भी चलता रहा। जीवन की यह कोशिश यथार्थ है या काल्पनिक, यह मैं निर्णय न कर सकी। यह जानने की मुझे इच्छा भी नहीं। पर परिवर्तन की आवश्यकता महसूस करने लगी। परिवर्तन मुझे प्रफुल्लित करता है।

दीवार पर लगी घड़ी की आवाज़ 'टिक-टिक' कर रही थी। इसकी आवाज़ में ही कितना परिवर्तन हो गया है! वातावरण इसके संगीत से भरा रहता है। पहले इसकी आवाज़ से मेरी बेचैनी बढ़ जाती थी। कभी-कभी तो उस आवाज़ से दूर जाने की इच्छा होती और अपने कानों को बंद कर लेती। इस आवाज़ से मुझे ऐसा लगता था कि जीवन व्यंग्य कर रहा है। अब इसका स्वर कितना मीठा लगता है! अब मैं इसकी आवाज़ में हर क्षण बदलते हुए अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देखती हूँ। पर अब भी कभी-कभी डर लगता है कि कहीं जीवन में परिवर्तन होते-होते रुक न जाये। परिवर्तन मेरे जीवन के आँगन में आकर मुकर न जाये और जीवन मेरे समीप आकर कट न जाये। मेरे जीवन में हर बार ऐसा ही होता है। जीवन में परिवर्तन समीप आकर फिसल जाता है। जीवन कट कर रह जाता है।

बात उन दिनों की है जब मैं बच्ची थी। माँ के बार-बार कहने पर पिताजी हमें भी अपने साथ बर्मा ले गये। पिताजी ले जाना नहीं चाहते थे क्योंकि उनके परिवार में एक ऐसी दर्दनाक घटना घट चुकी थी। मेरे दादा जी तिब्बत में व्यापार करते थे। दादीजी ने किसी से सुन लिया कि तिब्बत में दादाजी ने दूसरी शादी कर ली है। एक बार जब दादाजी नैपाल आये तो दादी ज़िद करके उनके साथ चलने को तैयार हो गयीं। दादाजी को मजबूर होकर ले जाना पड़ा। पर उस बार दादाजी और दादी

तिब्बत न पहुंच सके। किसी ने कहा कि बर्फ गिरने से उनकी मृत्यु हो गयी, किसी ने कहा कि नदी पार करते हुए वह बह गये। जो भी हुआ फिर उनकी खबर न आयी और न ही वे लोग आये। बर्मा पहुंच कर सात वर्ष की बच्ची के जीवन में एक नया परिवर्तन दिखने लगा। पर एकाएक बर्मा के जीवन में गंभीर परिवर्तन आ गया। सारा बर्मा कराह उठा। आदमी आदमी के जीवन का भूखा हो गया। एक देश दूसरे देश को हड़पने के लिए सपने देखने लगा। माँ नैपाल लौट आना चाहती थी। पर संघर्ष करने वाले मेरे पिता भागना नहीं चाहते थे। जब मृत्यु ने सारे देश को हुंकार किया तो हम लोग जहाज़ में चढ़ कर अपने देश के लिए चल पड़े। आकाश से गिरते हुए अग्निकुण्ड ने हमारे देश को ध्वस्त कर दिया। केवल शत्रु नहीं बल्कि मित्र भी शत्रु होते चले गये। अपने भी पराए हो गये। कितने लोग तो मेरी माँ और मुझ पर गिद्ध-दृष्टि भी डालने लगे। माँ ने तो आत्महत्या करने की ठान ली थी। मौत के भय से घिरा हुआ हमारा जीवन बढ़ रहा था। जंगलों में हथियारबंद लोगों ने भी पीछा किया। कितने लोग मारे गये, कितनों का अपहरण हुआ। पग-पग पर काल की चपेटों से बचते हुए हम अपने देश की ओर बढ़ रहे थे। कभी पिता के चुराये हुए खाने से पेट भरता और कभी वायुयान द्वारा गिराये गये भोजन से अपनी भूख को मिटाते। एक दिन की बात है, मुझे काफी भूख लगी थी। दो दिन से खाने को कुछ न मिला था। आकाश में वायुयानों की गड़गड़ाहट सुनायी दी। माँ भोजन पाने की आशा में दौड़ती हुई उस ओर चली गयी। बहुत-से लोग थे। पर विधि का विधान! वह तो शत्रु देश का वायुयान था। वहाँ तो भोजन की सामग्री नहीं, बम गिरा। इस तरह बहुत-से लोगों के साथ मेरी माँ भी अपनी बच्ची के लिए भोजन लेने गयी स्वयं मानव की नृशंसता का भोजन हो गयी। इसलिए मुझे परिवर्तन के नाम पर जीवन ही बिखरता-सा लगता है और मैं ताकती रह जाती हूँ। जीवन को खोकर मैं परेशान हो जाती हूँ। जीवन के प्रति विश्वास टूट जाता है।

आफिस में नये मैनेजर आ गये थे। आफिस का सारा वातावरण एकाएक बदल गया। आफिस में एक नयी जान आ गयी। वह तो चुप

रहना जानते ही नहीं थे। उन्हें, कि मैं ग्राफिसर हूँ, इसकी भावना भी नहीं थी। वह काम पड़ने पर स्वयं टाइपिस्ट के कमरे में चले जाते। वह बड़े हँसमुख थे।

—तिमिलाजी, मोटर ग्राफिस का है इसलिए यह ग्रापको लेने भी ग्रायेगी ग्रौर छोड़ने भी जायेगी। ग्राप भी तो एक ग्राफ़िसर हैं।

एक दिन ग्राफिस से ग्राने लगी तो मैनेजर ने कहा। उस दिन से ही बस का झंझट छूट गया। घर जाने के लिए सुनसान पथ पर भयभीत होकर ग्रकेली गुज़रने यी कोई ज़रूरत नहीं रहेगी। फिर तो ग्राफिस के लिए देर हो जाने का सवाल ही पैदा नहीं होगा। कितने ग्रच्छे हैं यह नये साहब ! मनुष्य होकर इस तरह होना चाहिए। ग्रनजाने में मैं उन की प्रशंसिका हो गयी।

तिमिला एक ग्राफ़िसर ! मैं ग्रपने ग्राप हँस पड़ी। फाईल को पलट कर देखते ही मैं ग्राश्चर्य में पड़ गयी। क्या सचमुच यह परिवर्तन है ? मेरी सहायता के लिए एक नये व्यक्ति की नियुक्ति गयी थी। वह नौजवान ड्राफ्ट करने का काम करेगा। फाईलों से भी वही जूझेगा। मैं कुछ प्रमुख पत्रों को लिखूँगी वरना सब पत्रों पर हस्ताक्षर-मात्र करुँगी। टाइपिस्ट के यहाँ भागते हुए जाना नहीं पड़ेगा। पियन की ग्रनुपस्थिति में 'डिस्पैच-रूम' की ग्रोर दौड़ना नहीं पड़ेगा। सचमुच तिमिला ग्रब एक ग्राफ़िसर हो गयी थी। इसके ग्रलावा चाय पीने के-लिए डेढ़ बजे से दो वजे तक छुट्टी भी मिलने लगी। मेरे लिए चाय पियन ही ला देता था।

उस दिन भी चाय समय पर ग्रा गयी। मुझे चाय ग्रच्छी न लगने के कारण उसके लिए पैसे खर्च करने की इच्छा नहीं होती। मन में किसी ने कहा, तुम कंजूस हो। तव विचारों ने मुझे घेर लिया। सचमुच मैं कंजूस हूँ। मेरी साड़ी ग्रौर चप्पल कंजूसी का प्रतीक हैं। मुझसे ग्रच्छी साड़ी तो केशरी ही पहनती है। पहनती मुझे सिनेमा देखे एक युग हो गया परन्तु केशरी तो प्रत्येक शनिवार को सिनेमा जाती है। मुझे जीवन में खोखली उमंग की ग्रावश्यकता नहीं। दिखावट में मैं भरोसा नहीं रखती। सामर्थ्य होने पर भी मैं इन चीज़ों को पाना नहीं चाहती।

यह जीवन नहीं एक माया है, छलावा है।

—साहब ने बुलाया है।

पियन ने आकर मुझसे कहा। मैनेजर कमरे से बाहर आ चुके थे। शायद सचिवालय जा रहे थे। एक आदमी उनसे बात कर रहा था। मुझे देखते ही मैनेजर ने कहा—

—तिमिलाजी, मैं ज़रा बाहर जा रहा हूँ। कहीं से टेलीफ़ोन आये तो मैं मीटिंग में गया हूं, कह दीजियेगा। ज़रूरी पत्रों पर आप स्वयं साइन करके भेज दीजिये।

मैनेजर के जाते ही मुझे लगा कि आफ़िस से रौनक़ चली गयी है। तिमिला अब ज़रूरी पत्रों पर हस्ताक्षर करेगी। तिमिला अब एक आफ़िसर है। थी तो पहले भी आफ़िसर पर नाम-मात्र की, लेकिन अब तो सचमुच की हो गयी है। ज़रूरी कामों को छोड़ कर भी अब मैं समय पर घर आ जाती थी। अब इन झंझटों में मेरा सहायक फँस गया था। खिड़कियों से धूप छन कर आ रही थी। मेरी छाया लम्बी होकर फर्श पर फैली हुई थी। सचमुच मानव-जीवन एक छाया-मात्र है। अब मुझे रामलालजी की याद उतनी नहीं सताती क्योंकि अब तो मेरे दिमाग़ में नये साहब छाये हुए हैं। मैं उनका कहना नहीं टाल सकती। उनका कहना मानने में मुझे मज़ा आता है। उसी दिन आफिस में पिकनिक जाने का प्रोग्राम बना। मैं जाने को तैयार नहीं थी। रामलालजी लड़कियों का पिकनिक पर जाना पसंद नहीं करते। पर जब स्वयं मैनेजर ने मुझसे कहा तो मैंने न चाहते हुए भी हाँ कर दी। मुझे याद है कि मैं पिकनिक में रम न सकी। मुझे चारों ओर कप-कप में, अणु-अणु में रामलालजी की छाया दिखायी देती थी। लगता था कि वे मुझे दुत्कार रहे हैं। पर पता नहीं क्यों फिर भी मैं प्रसन्न थी। शायद जीवन में परिवर्तन का आभास पाकर...नहीं, नहीं, यह जीवन नहीं है। जीवन ऐसा हो ही नहीं सकता। यह तो बनावटी जीवन है। अब मैं कभी ऐसे छलावे में नहीं पड़ूँगी। अब मैं किसी के कहने पर और स्वयं मैनेजर के आग्रह पर भी कहीं नहीं जाऊँगी। मैं नौकरी छोड़ दूँगी पर ऐसी चीज़ों में भाग न लूँगी।...अनायास मेरे हाथ टेबुल से टकरा गये। मैं होश में आ

गयी । सचमुच यह जीवन मेरे लिए नहीं है । मुझे तो अपने रेत-से जीवन के लिए एक साथी की आवश्यकता है । मुझे जीने के लिए एक आधार की आवश्यकता है । जीवन का आधार...नया मैनेजर...रामलालजी ? रामलालजी से भेंट हुए मुद्दत हो गयी । तीर्थयात्रा के बाद वह भी तो नहीं आये और न ही फ़ोन किया है । शायद मुझसे नाराज़ हैं । पिकनिक की बात से तो उनका गुस्सा काफी बढ़ गया होगा । इसलिए इन दिनों जब मैं उन्हें सपने में देखती हूँ तो वे गुस्से में ही रहते हैं । एक बार तो गुस्से में चपत भी लगा दी । क्या वे सचमुच नाराज़ हैं ? नहीं, नहीं, रामलालजी मुझसे गुस्सा नहीं कर सकते । कहीं उनकी तबियत तो खराब नहीं ? मुझे एक बार उनके यहाँ अवश्य जाना चाहिए । मैं भी कितनी स्वार्थी हो गयी हूँ ! जिसने मेरे जीवन को सहारा दिया उसी को भूलती जा रही हूँ । मैं उठ कर फ़ोन करने गयी । प्रेसवालों ने कहा रामलालजी आये तो थे परन्तु जल्दी चले गये हैं । इसका मतलब कि उनकी तबियत खराब नहीं । फिर मुझसे क्यों बेगाना-सा व्यवहार कर रहे हैं ? कोई दूसरी तो नहीं मिल गयी ? हो सकता है मेरे 'न' कहने पर, उनके बुलाने पर भी न जा सकने के कारण कोई और ढूँढ़ ली होगी । प्रत्येक मनुष्य को जीने के लिए एक साथी की आवश्यकता होती है । रामलालजी ने ठीक ही रास्ता अपनाया है । मुझे उनसे जलन नहीं होनी चाहिए । मुझे तो साथी नहीं मिल सकता । चाहते हुए भी बना नहीं सकती । समाज की बेड़ियाँ तोड़ने की मुझमें हिम्मत होकर भी क़दम नहीं उठा सकती । मैं अपने मनहूस जीवन की छाया से किसी के जीवन को बर्बाद नहीं करना चाहती । रामलालजी का मुझसे दूर रहना ही अच्छा है । नहीं तो वे भी मेरी ज्वाला में जल कर भस्म हो जायगे । उनका जीवन भी बर्बाद हो जायेगा । मेरा जीवन तो हतभाग की एक जीवित कहानी है । मैं रामलालजी से नहीं मिलूंगी । उनके जीवन के लिए मुझे उनसे दूर रहना ही बेहतर होगा । अपने जीवन को पाने की लालसा में उनका जीवन बिगाड़ना अच्छा नहीं । मैं लौट रही थी कि मैनेजर आ गये ।

—कोई फ़ोन आया था ?

—नहीं।

—क्या कोई आया था ?

—नहीं।

—हाँ, मैं कहना ही भूल गया था कि अब से प्रायः सभी कागज़ातों पर आप ही हस्ताक्षर करेंगी। केवल पालिसी संबंधी कागज़ात ही मेरे यहाँ भेजें।

—जी !

मैं अपने कमरे में चली आयी। ठीक है, काम का बोझ होना ही मेरे विकल मन के लिए आवश्यक है। इस तरह मैनेजर की सभी ज़िम्मेवारियाँ मुझ पर आ गयीं। अब आफ़िस के काम से लोग मुझसे मिलने आने लगे। मुझे काम करने में तो मज़ा आता पर लोगों से मिलना अच्छा नहीं लगता था। विभिन्न प्रकार के लोग आते थे। उनकी बहुत-सी बातें तो मेरी समझ में ही नहीं आती।

—तिमिलाजी ! आपके काम से डाइरेक्टर बहुत प्रसन्न है और प्रमोशन की बात हो रही है।

एक दिन मैनेजर साहब ने मुझसे आकर कहा। पता नहीं क्यों मुझे प्रमोशन की चाह नहीं थी। मैं जैसी थी वैसी ही संतुष्ट थी। यही तो मेरी बुरी आदत है। प्रमोशन किसको अच्छा नहीं लगेगा ! पर प्रमोशन की बात मुझे अच्छी नहीं लग रही थी। रामलालजी से शादी भी मुझे पसंद नहीं। प्रमोशन भी पसंद नहीं। दीवार पर लगी घड़ी ने मुझे झकझोर दिया। मुझे प्रमोशन पसंद है और तब मन में अचानक गुदगुदी-सी महसूस हुई। मुझे रामलालजी के साथ शादी भी पसंद है। मैं उनकी पत्नी बनना चाहती हूँ। उनके बच्चों की माँ। मुझे एकाएक नाचने की इच्छा हुई। ख़यालों में मेरा तन-मन झूम उठा। कुछ गुन-गुनाने भी लगी। उसी समय पियन आ गया। मैं अपने में ही लजा गयी। मैनेजर साहब मेरे लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हैं ! कहीं उनका मुझसे ...! नहीं, नहीं ! मुझे यह सोचना भी पाप है। फिर भी मेरा मन रामलालजी और मैनेजर साहब के व्यक्तित्व के बीच में त्रिशंकु बन कर लटक गया।

धीरे-धीरे मैं महसूस करने लगी कि मैनेजर का व्यक्तित्व मेरे जीवन में छा गया है। उनके एक दिन आफिस न आने पर मैं बेचैन हो जाती हूँ। आफिस के अन्दर मेरी छाया फर्श पर फैली हुई थी। मुझे लगा कि मेरा जीवन मेरे हाथों से फिसलता जा रहा है। मैं एकाएक कुर्सी से उठी, मेरी छाया लड़खड़ा पड़ी। जीवन ने करवट बदली। नहीं, मैं किसी की की छाया बन कर जीना नहीं चाहती। मुझे छाया से नहीं जीवन से प्यार है, मुहब्बत है। मैं मैनेजर की छाया नहीं हूँ। मेरा अपना व्यक्तित्व है, अपना जीवन है। और मेरे जीवन को व्यक्तित्व देने वाले हैं अपने रामलालजी ! मैं रामलालजी छाया की हो सकती हूँ, और किसी की नहीं। मेरे शरीर सारे में रामलालजी छा गये। मैं रामलालजी से मिलने के लिए, उनसे बातें करने के लिए तड़प उठी, बेचैन हो उठी। पाँच बजने ही वाले थे। आफिस की मोटर मुझे घर पहुँचाने जायेगी। और मैनेजर साहब भी साथ होंगे। मैं कैसे कहूँगी कि मुझे पाटन जाना है। मैं दुविधा में पड़ गयी। मेरा साहस जवाब दे गया। मुझे अपने संकोच पर लज्जा आ गयी—मैं कितनी बुज़दिल हो गयी हूँ ! चाह कर भी रामलालजी के वहाँ न जा सकी। मोटर में बैठ कर घर आ गयी। मैनेजर साहब ने रास्ते में कितनी बातें कीं पर मेरा उत्तर हर दम छोटा रहता था। मुझे अपनी इस अवस्था पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था।

जीवन को पाने के लिए मन की हत्या हो गयी।

शनिवार, छुट्टी का दिन था। खाना खा कर अपने कमरे की खिड़की में बैठी थी। नानाजी धूप में बैठे थे। भाभी कपड़े धोने की तैयारी कर रही थी। दशरथ गाँव में खेलने चला गया था। भाईसाहब तो सुबह से ही शहर में किसी दोस्त से मिलने गये हुए थे। दूर मन्दिरों से घंटियों की ध्वनि आ रही थी। मज़े का वातावरण था। धूप में जाकर भाभी से गप्प मारने की इच्छा हुई। पर मैं न गयी, क्योंकि नानाजी तो केवल मृत्यु

की बात करेंगे। कितने दिन जीना है ! मुझे मृत्यु से डर लगता है। जब कोई मृत्यु की बातें करता है तो मेरे शरीर में कँपकँपी छूट जाती है। सचमुच नानाजी अधिक दिन अब इस संसार में नहीं रहेंगे। उनका सिर मृत्यु के सन्निकट झुक चुका है। उनको सबसे अधिक मेरी चिन्ता है। खुल कर तो नहीं कहते पर उनकी इच्छा थी कि मैं घर बसा लूं। भाभी से भी क्या बात करूँ। वह तो घर की बातें ही करेगी। भाईसाहब कमा सकते तो कितना अच्छा होता ! मेरे मन में क्या बीत रही है, मेरा भविष्य क्या होगा—इसकी फिक्र किसी को नहीं है। चलो रामलालजी के घर—मेरे मन ने मुझे ललकारा। मैं उनके घर भी नहीं जाऊँगी। उन्होंने मुझे क्या समझ रखा है ? उस दिन जब न्यू रोड पर भेंट हुई तो अपने दोस्तों के सामने मुझ पर ताने कसने लगे। ठीक है, उन्होंने मेरे लिए बहुत कुछ किया पर इसका मतलब यह तो नहीं कि जहाँ चाहे मुझ पर व्यंग्य करें। एक बार तो मेरी इच्छा हुई कि लगाऊँ एक चाँटा, परन्तु मैंने अपने को सँभाल लिया। कहने लगे कि नये मैनेजर के साथ मेरी खूब बनती है, इसलिए सबको भूल गयी हूँ। मुझे लगा कि यह मेरे रामलाल नहीं, उनकी ईर्ष्या बोल रही है। अब मैं उनको बहुत समझने लगी हूँ क्योंकि मेरे विषय में ऐसी बेतुकी बातें एक दिन दशरथ से भी कर गये। आफिस के लोगों के साथ पिकनिक जाने के प्रोग्राम को जान कर वे अपने को रोक नहीं सके थे। आये तो मुझ पर गुस्सा उतारने परन्तु मुझे न पाकर अबोध बालक पर ही अपना गुस्सा उतार गये। रामलालजी के मन में जलन की आग भड़क रही है यह जान कर मुझे खुशी हुई। जलन प्यार का दूसरा नाम है। मैं भी इन बातों को सुन कर कितने आवेश में आ गयी थी ! आती भी क्यों नहीं ? मैं प्रेम का व्यापार करने वाली लड़की नहीं हूँ। मुझे याद है कि दशरथ की बातें सुन कर मैं सीधा रामलालजी के घर चली गयी। वह घर पर नहीं थे। मैंने अपना सारा क्रोध उनकी बहन पर उतार दिया। उनकी बहन कुछ न समझ सकी। वह तो पत्थर की मूर्ति की तरह सब सुनती रही। नहीं, मैं रामलालजी के घर नहीं जाऊँगी। अब तिमिला वह तिमिला नहीं। अब तिमिला का अपना व्यक्तित्व है। वह एक आफ़िसर है—आफ़िसर। ऐसा सोच कर

मुझे संतोष मिला। फिर भी पाटन जाने को मेरे पैर चंचल होने लगे। ठीक है, पाटन तो जाऊँगी पर रामलालजी के यहाँ नहीं, अपनी सहेली तारा के घर। रामलालजी जान ही जायेंगे कि मैं पाटन आकर भी उनके घर नहीं गयी। यह बात उनके मन की आग को और भड़कने के लिए बाध्य करेगी। तब बहुत मज़ा आयेगा। पर एकाएक मेरे विचारों को धक्का लगा। रामलालजी के मन में मेरे प्रति अविश्वास की भावना में कहीं तारा का तो हाथ नहीं ? हो सकता है, उसने रामलालजी को बेकार की बातें सुना कर मुझसे दूर करने की कोशिश की हो ! पर रामलालजी भी कितने मूर्ख हैं कि सोने और पीतल में भी फ़रक नहीं कर पाते। मैं रामलालजी के यहाँ नहीं जाऊँगी; तारा के यहाँ भी नहीं जाऊँगी। दरवाज़े बंद करके नाना जी के पास धूप में चली गयी।

—तिमिला !

मुझे देखते ही नानाजी का क्षीण स्वर वातावरण में काँप उठा। पता नहीं नानाजी क्या कहना चाहते हैं। मैं उनके नज़दीक ही बैठ गयी। नानाजी कुछ कहना चाहते थे पर कह नहीं पा रहे थे। वे कहने के लिए संघर्ष कर रहे थे पर बात उनके होठों पर आने से पहले ही फिसल जाती। अजीब-सा तमाशा था ! कौन-सी बात है जो वह कह नहीं पा रहे थे ? ऐसी क्या बात थी जो वे इतना हिचकिचा रहे थे !

—क्या हुआ, नानाजी ?

—कुछ नहीं, तिमिला ! देखो मेरे तो अब चंद रोज़ बाकी हैं। तुम...उन्हें खाँसी शुरू हो गयी। लगता था, प्राण अभी निकल जायेंगे। मैंने उनको लिटा दिया। छाती पर मालिश करने लगी क्योंकि खाँसी होने पर नानाजी को छाती में भयानक पीड़ा होती थी। ठीक इसी समय मुख्य द्वार किसी ने खोला। मैंने सोचा भाईसाहब आये होंगे पर यह तो मोहनमाया थी। वह यहाँ क्यों आयी ? इसका तो चुगलियों के सिवा और कोई काम ही नहीं। मोहनमाया नानाजी के पास आ कर बैठ गयी। मुझे भय लगने लगा कहीं नानाजी के सामने रामलालजी और मेरे संबंध में कुछ बात न कह दे।

—तिमिला, मैं तुमसे ही मिलने आयी हूँ ! सोचा, आज शनिवार है

तुमसे भेंट हो जायेगी।

मैंने सोचा इस भूमिका के बाद कुछ रुपये मुझसे माँगेगी। रामलालजी के प्रति मेरी कमज़ोरी को वह जानती है। मेरी इस कमज़ोरी का फ़ायदा उठा कर उसने कई बार मुझसे आफिस में आकर रुपये लिये। आज तो मैं इसको एक पैसा भी नहीं दूंगी। कहने दो जो इसकी इच्छा हो। मैं रामलाल जी के घर जाती हूँ तो क्या हुआ? किसी के घर जाना पाप नहीं। मेरे विचारों को भंग करती हुई मोहनमाया ने कहा—

—तिमिला, हो सके तो मेरे बड़े लड़के को अपने आफिस में नौकरी दिला दो। घर चलाना मुश्किल हो गया है। तुम तो सब कुछ जानती हो।

मैं सब कुछ जानती थी। उसका पति एक शराबी था। दिन-भर इधर-उधर गप्पें मारता और रात को शराब पीकर सो जाता था। शराब के लिए पैसे न मिलने पर मोहनमाया को मार पड़ती थी। मोहनमाया ने छोटी-सी दूकान खोल रखी थी जिसमें वह सिगरेट, सुपारी, बिस्कुट और सोडा आदि वेचती थी। पर इससे उसकी आमदनी उतनी नहीं होती थी जितनी उसके परिवार को आवश्यकता थी। फलतः कभी इधर कुछ माँग लिया, कभी उधर कुछ। कभी इसके घर खा लिया तो कभी उसके घर।

—कितना पढ़ा है?

—पढ़ा तो नहीं है। पन्द्रह वर्ष का है। जिस काम में लगाओगी कर देगा। मुझ पर इस बार यह कृपा तुम्हें करनी ही होगी।

—ठीक है, उसे कल आफ़िस भेज देना आपके लड़के को मैं काम में लगा लूंगी।

—तिमिला, सदा तुम्हारा भला हो। चलूं, तुम्हारी भाभी से मिल लूं।

मोहनमाया को देखते ही भाभी कपड़े धोना छोड़ किसी काम से ऊपर चली गयी थी। मोहनमाया का घर आना किसी को पसन्द नहीं। मोहनमाया जाती-जाती रुक गयी और मुझसे कहा—

—तिमिला! तारा की शादी हो रही है। तुम्हें तो दोनों ओर से

निमंत्रण आयेगा। क्या इन दिनों रामलालजी से भेंट नहीं हुई ? शादी की तैयारी में लगे होने के कारण शायद तुम्हारे यहाँ आने का मौक़ा ही नहीं मिला।

मैं केवल सुनती रही। मोहनमाया को भी मालूम था कि उसकी बातों ने मुझे एक थप्पड़ लगा दिया है और वह इसमें प्रसन्न थी। वह ऊपर चली गयी। मैं अपने को सँभाल न सकी। मैं आँगन से बाहर आ गयी। चलती-चलती मंदिर में जा पहुँची। इच्छा हुई कि मन्दिर में रखी हुई मूर्ति को उखाड़ कर फेंक दूँ। सारी बस्ती को जला दूँ। इसीलिए तो आजकल रामलालजी का फ़ोन नहीं आता था। किसी ने मुझे ख़बर भी न की। दोनों में से अगर कोई कह देता तो क्या बात थी ! उनकी शादी हो रही तो मुझे क्या ! रामलालजी को ऐसा नहीं करना चाहिए था और तारा की एक सहेली के प्रति यह ग़द्दारी ! पर इसकी दोषी तो मैं हूँ। मेरे न कहने पर ही उन्होंने तारा को चुना तो क्या हुआ ! तारा रामलालजी की बीवी ! तारा और रामलालजी पति-पत्नी ! तिमिला ने तिमिला की भर्त्सना की। तिमिला को तिमिला से घृणा हो गयी। मैं अपने से ही परेशान हो गयी। मैंने अपने को ही एक थप्पड़ मारा। यह प्रवंचना ! यह अवहेलना ! मैं जीना नहीं चाहती। आज ही इसी वक्त अपना काम तमाम करूँगी। मेरे पैर किसी अनजान पथ की ओर बढ़ने लगे। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब मुझे जीवन से जी बहलाने की ज़रूरत नहीं। मेरा सर्वस्व लुटा जा रहा था। मैं इसको देख नहीं सकती, सह नहीं सकती।

मुझे मालूम नहीं, मैं कैसे बस में चढ़ी और कैसे तारा के घर पहुंच गयी। मुझे उस समय होश आया जब तारा के बड़े भाई ने मुझसे कहा—

—तिमिला, आज तो तुम रास्ता ही भूल गयी हो। तारा तुम्हें कितनी बार याद कर चुकी है !

उसी समय खिलखिलाती हुई तारा कहीं जाने के लिए बाहर आयी। साथ में छोटी बहन भी थी।

—अच्छा हुआ तिमिला, तुम भी आ गयीं। हम लोग चिड़ियाघर

जा रहे हैं । तुम भी चलो ।

कितना प्रसन्न है सारा घर सारा, वातावरण ! क्यों न हो ? जा तो रही है चिड़ियाघर परन्तु इसकी पोशाक तो देखो स्वयं एक चिड़ियाघर लगती है । तारा के बड़े भाई ने कहा—

—तारा, पहले तिमिला को ऊपर ले जाग्रो । कुछ देर के बाद जायेंगे । ग्रभी समय ही क्या हुग्रा है ! मुझे भी मंगल बाज़ार तक एक काम था, कर लूं ।

तारा, उसकी बहन ग्रौर मैं तारा के कमरे में चली गयीं । कमरे का रूप ही बदला हुग्रा था । नया सोफा ग्रौर रेडियोग्राम पड़ा था । पर्दे भी नये थे । कमरे में एक नयी ज़िन्दगी थी । क्यों न हो, तारा की ज़िन्दगी में एक नया मोड़ ग्राने वाला था । उसको एक नया संसार मिलने वाला था । मैं तारा की शादी में ग्रवश्य भाग लूंगी । इतनी बन-ठन कर ग्राऊँगी कि रामलालजी को मन में कहना पड़ेगा, मुझे तारा से नहीं तिमिला से शादी करनी चाहिए थी । मैंने तारा के चेहरे को देखा । उनके मन के ग्रन्दर उठ रही उमंग की लहरों को पढ़ने की कोशिश की ।

—तिमिला, तुम तो इन दिनों खूब बदल गयी हो । शायद ग्रब तुमको जीवन से प्यार होने लगा है ?

इस व्यंग्य से मैं सिहर उठीं । मैंने रूखे शब्दों में जवाब दिया—

—देखो तारा, संसार शीशे की तरह है । ग्रपने में परिवर्तन ग्राने पर लोग दूसरों को बदला हुग्रा पाते हैं । बदल तो तुम रही हो । ग्रब तो ग्रौर भी बदलती जाग्रोगी । हम लोगों से दूर पराई होती जाग्रोगी ।

तारा ग्रनमनी-सी होकर मेरी बात सुनती रही । उसका चेहरा कह रहा था कि उसे मेरे स्वर ग्रौर कथन पर गहरा ताज्जुब हुग्रा है । फिर भी एक फीकी हँसी हँस दी । मैं तो उसके मुँह से सब उगलवाना चाहती थी । मेरी इच्छा थी कि मेरे बिना पूछे ही वह सब कुछ कह दे । पर कितनी चालाक है ! समझ कर भी नासमझ बन रही है । मैं उसके मन को पढ़ न सकी । मेरे ग्रन्दर बेचैनी बढ़ती गयी । एक तूफान उमड़ने लगा ।

—तिमिला, तुम्हें क्या हो गया है ? रामलालजी के यहाँ जाने के

लिए क्या तुम्हारा मन चंचल हो रहा है ?

मुझे लगा कि अब मेरी सहने की शक्ति सीमा लाँघ जायेगी। बहुत कोशिश करने पर भी मेरे होंठों ने कह ही दिया—

—तारा, घबराओ नहीं। मैं तिमिला हूँ। मुझे औरों की चीज़ पर हक़ जमाना नहीं आता। रामलालजी तुम्हें ही मुबारक हों !

मैं उठ पड़ी। इसके बाद मुझे वहाँ रहने की इच्छा नहीं हुई। मैं यहाँ अधिक रहूँगी तो विक्षिप्त हो जाऊँगी। पर तारा ने मेरे हाथों को पकड़ कर सोफे पर बिठा दिया। ठीक इसी समय तारा के भाईसाहब आ गये। चिड़ियाघर जाने की बात होने लगी। पता नहीं क्यों मुझे उनके साथ जाना अच्छा नहीं लगा।

—तारा, मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं। मैं न जा सकूँगी।

तारा ने अपने भाईसाहब को देखा और उन्होंने कुछ इशारे से कहा। फिर दोनों मुस्करा पड़े। मैं जल उठी। मैं बस-स्टॉप पर चली आयी। वहाँ लोगों की भीड़ कम थी। पर सिनेमा का समय होता जा रहा था। भीड़ बढ़ जायेगी। इस पर चढ़ना भी मुश्किल हो जायेगा। काठमाँडू से आफिस की कार को आते हुए देखा। सोचा, शायद मैनेजर साहब सिनेमा देखने आये हों। मैं सँभल कर खड़ी हो गयी। मैनेजर तो आये पर उन्होंने मुझे अनदेखा कर दिया। मेरी नमस्ते का जवाब भी नहीं दिया। मैं तड़प उठी। मैनेजर साहब क्या मुझसे गुस्सा है ! पर क्यों ? मुझसे सब नाराज़ क्यों होते हैं ? मैंने कुछ नहीं किया है। अवश्य ही मैंने कुछ किया है, वरना वे ऐसे नहीं हैं कि नमस्ते का जवाब ही न दें। तब मुझे एक दिन की घटना याद आ गयी। सुबह ही मैनेजर साहब ने मुझ से आकर कहा—देखो, मैं सचिवालय जा रहा हूँ। तीसरे पहर मंत्रीजी आ रहे हैं। ज़रा आफिस साफ करवा कर रखना। मंत्रीजी के आने की बात सुन कर मैंने अपना आफिस तो साफ करवा लिया परन्तु रामलालज़ी का फ़ोन आ जाने के कारण मैं उनके आफिस को साफ करवाना ही भूल गयी। और इन्होंने बड़े दर्द-भरे शब्दों में कहा था—मैं सबको अपना समझता हूँ पर मुझे कोई अपना नहीं मानता। बस, उस दिन से मुझसे नाराज़ तो नहीं पर कुछ उखड़े-उखड़े-से रहने लगे। फिर

भी वे मेरे नमस्कार का जवाब न दें, यह नहीं हो सकता। शायद उन्होंने देखा ही न हो। इन दिनों वे कुछ खोये-खोये-से रहते हैं। घर में बीवी से झगड़ा तो नहीं हो गया ? बस-स्टाप पर खड़े-खड़े मैं मैनेजर की ओर खिचती चली गयी। मुझे उनकी अवस्था पर तरस आ गया। मन ने कहा, यह स्नेह नहीं प्यार है। मैं अपने से घबरा उठी। बस के आने से मेरा विचार टूट गया। अभी भी सिनेमा खत्म नहीं हुआ था, इसलिए भीड़ कम थी। आसानी से जगह मिल गयी। मैं एक बार फिर मैनेजर साहब और रामलालजी के विचारों में खो गयी। रामलालजी तो अब तारा के पति होने वाले हैं पर मैनेजर साहब तो पहले से ही पति हैं। बस चल पड़ी। धूप सेंकता हुआ काठमाँडू बड़ा मनोरम लग रहा था।

जब मैं घर पहुँची तो पूर्व के आकाश से संध्या धीरे-धीरे उभरने लगी थी। मैं कमरे में गयी। अकेलापन खटकने लगा। विचारों ने मैनेजर साहब को मेरे सामने ला दिया। मुझे उनके विषय में सोचने की इच्छा न होते हुए भी उन्हीं के खयालों में खो गयी। मैंने बहुत कोशिश की कि अपनी विचारधारा को रामलालजी की ओर ले चलूँ पर वहाँ तो तारा का रूप दीवार बन कर खड़ा हो जाता। मैंने अपने विचारों को बे-लगाम छोड़ दिया। मैनेजर को मुझसे गुस्सा होने का क्या अधिकार था ? मैं उनकी नौकरानी नहीं हूँ। मैं अपना कमरा साफ नहीं करती तो क्या उनका करती ? वे इस काम के लिए पियन से कह सकते थे। उनका मन मेरी ओर खिचने लगा है, इसलिए मुझसे लड़ने का बहाना बना लेते हैं। पर मुँह से कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती। बुज़दिल ! उस दिन मुझसे रंज़ होकर अपना गुस्सा पियन पर उतार रहे थे। मुझसे तो अपने को संयत करके बातें करते हैं पर मैं उनके चेहरे से जान जाती हूँ कि उनका मन चंचल है, विह्वल है। पता नहीं क्यों, मुझे उनके बारे में सोचने में आनन्द आ रहा था। विचारों में बहते-बहते कभी मेरी इच्छा होती कि उनके यहाँ जाऊँ। मन में उनके प्रति दया आ गयी। इतने बड़े आफ़िसर की यह अवस्था देख कर मैं हैरान हो जाती हूँ। काम करने में तो कितने होशियार हैं पर गुस्से में एक बच्चे की तरह।

—तिमिला, मुझे तो घर के काम से फुर्सत नहीं। तुमको तो शनिवार

को भी बाहर जाना होता है।

भाभी के शब्दों में रोष था। मैंने कुछ नहीं कहा।

—तुमसे कितने लोग मिलने आये थे? मैं उनको क्या जवाब देती? कुछ बता कर तो जाया करो।

भाभी चली गयी।

कौन आया था? शायद रामलालजी निमन्त्रण देने आये हों। पर रामलालजी को तो घर के सब लोग पहचानते हैं। शायद मैनेजर साहब एक दिन आफिस में मेरे घर आने की बात कर रहे थे। पर वे भी नहीं होंगे क्योंकि उनके पहले के स्वभाव और अब के स्वभाव में काफी परिवर्तन हो गया है। पहले का-सा हँसमुख मैनेजर अब सबसे खिचा-खिचा रहने लगा था। पहले मैं बात खत्म करना चाहती थी तो वे बात को बढ़ा देते थे, परन्तु अब मैं बातें करना चाहती हूँ तो वे छोटा-सा उत्तर देते हैं। शायद वे मुझसे कुछ कहने आये हों, अपनी व्यथा सुनाने आये हों? शायद...नहीं-नहीं यह असम्भव है। अच्छा ही हुआ कि उनसे भेंट नहीं हुई क्योंकि मैं ऐसी-वैसी लड़की नहीं हूँ। मैं तो अपने रिश्तेदारों की बात पर भी अपने आपे से बाहर हो जाती हूँ। अच्छा हुआ मैं घर पर नहीं थी। मेरे भोलेपन का फ़ायदा उठा कर मेरे चरित्र पर कोई भी लांछन नहीं लगा सकता। किसी को क्या पता कि मैं ऐसे समय में सिंहनी का रूप धारण कर लेती हूँ। आज तक किसी को मुझसे कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई।

दशरथ खाने के लिए बुलाने आया। भाईसाहब भी रसोई में थे। मुझे खुशी हुई कि बहुत अरसे के बाद मैं भाईसाहब के साथ खाना खा रही हूँ। मेरी कल्पना का संसार मुझसे कोसों दूर चला गया। मेरे विचारों में अब कोई नहीं था—न रामलालजी और न ही मैनेजर साहब। मेरे सामने परिवार का सुख था। उस परिवार का, जिसको मेरी इतनी आवश्यकता है जितनी अन्धे को लाठी की। ठीक ही हुआ, रामलालजी की शादी तारा से हो रही है और मैनेजर साहब शादी-शुदा हैं।

बहुत दिनों के बाद हमने आपस में मिल कर बातें की—नानाजी के स्वास्थ्य, दशरथ की पढ़ाई, मेरे आफिस और गाँव में घटित घटनाओं

आदि सभी विषयों पर। तब मुझे लगा कि मेरा जीवन फिसल गया था पर इसका अन्त नहीं हुआ। मैं रास्ता भूल गयी थी पर ग़लत रास्ते पर नहीं थी। दूर पहाड़ों में चाँदनी बिखरी हुई थी। वातावरण में प्रकृति का एक सुन्दर संगीत गूँज रहा था।

एक ही हफ़्ते के अन्दर दो ऐसी घटनाएँ हुईं, जिनसे जीवन पर से मेरा विश्वास उठ गया। नानाजी तो बूढ़े थे, उनका मर जाना उतना कारुणिक नहीं था जितना कि मैनेजर साहब का कार-एक्सीडेंट हो जाना। अधिक चोट तो नहीं आयी पर उनकी आँखों की ज्योति चली गयी। कभी-कभी तो ऐसा लगता कि इसकी दोषी मैं ही हूँ। जहाँ जाती हूँ कुछ ऐसा ही हो जाता है। मैं हर रोज़ आफिस आती हूँ। अगर न आऊँ तो आफिस का काम रुक जाता है। पर न तो मुझमें जान थी और न ही आफिस में। मैनेजर का सूना कमरा मुझे खाने को दौड़ता था। कभी-कभी ऐसा लगता था कि उन्होंने मुझे बुलाया है। परन्तु सूनी कुर्सी को देख कर बरबस मेरी आँखों में आँसू आ जाते थे। मुझे इतनी चोट अपने प्रथम पति के त्यागने और दूसरे पति की मृत्यु पर भी नहीं हुई थी। पता नहीं क्यों, मुझे लगता था कि मेरा एक सहारा—मेरा भला चाहने वाला व्यक्ति मुझसे बिछुड़ गया है। कभी तो ऐसा महसूस होता कि मैंने ही उनके जीवन की हत्या की है। उनकी बातों को न समझ कर उन्हें चोट पहुँचायी है। उन्हें मुझसे कुछ पाने की इच्छा थी। एक बार उन्होंने कहा था—

—नारी को माँ और बहन की तरह पुरुष को सम्भालने की शक्ति होनी चाहिए। पर नारी तो प्रेमिका बनते ही पत्नी बनने की कोशिश करती है और पुरुष जिसके आँचल का सहारा लेना चाहता है वही उसके लिए समस्या बन जाती है, भार बन जाती है। मैं उनको समझ न सकी। इसी का मुझको दुख था और इसी कारण मेरा मन बार-बार कहता था कि मैंने ही उनकी दृष्टि छीन ली है और उन्हें जिन्दा लाश बना दिया

है। आफिस के सब लोग उनके घर गये। मैं चाह कर भी न जा सकी और उन्होंने किसी से मेरे बारे में पूछा भी नहीं। अब तो वे अपने गाँव चले गये हैं। न जाने कब भेंट होगी!

अचानक फ़ोन की घंटी बज उठी। मैं अपने होश में आ गयी। एक ठेकेदार ऋद्धिराज का फोन था। वह मुझसे मिलना चाहता था। यह वही व्यक्ति है जो मोटर पर मुझसे घर पर मिलने एक महीने पहले गया था। आज ही भारत से आया है। मुझे इन झंझटों में पड़ना अच्छा नहीं लगता। यह काम मेरी समझ में नहीं आता। पर मजबूरी थी। न चाहते हुए भी आफिस आना पड़ता था।

फ़ोन की घंटी फिर बजी। फ़ोन आने पर ऐसा लगता है कि मैनेजर साहब बोलेंगे। पर वे तो अब दूर चले गये हैं। सुनती हूँ वहाँ फ़ोन तो क्या बिजली भी नहीं है।

—तिमिला, उस दिन तो तुम ऐसे ही नाराज़ हो गयीं।

तारा की आवाज़ अनजानी-सी लगी।

—तुमसे किसने कहा है कि मेरी शादी रामलालजी से हो रही है? बेकार में ग़लत-फ़हमी का शिकार न बनो।

मैंने जवाब नहीं दिया। क्या कहती?

—सुनो तिमिला, रामलालजी को तो मैं बड़ा भैया मानती हूँ।

फ़ोन अचानक फिसल कर क्रेडेल पर चला गया। रामलालजी तारा के बड़े भाई! मैं बच्ची नहीं हूँ। मुझे अब किसी लाल की ज़रूरत नहीं है। रेत की दरार और मेरा जीवन रेत की दरार की एक नज़्म!

पियन एक चिट लाया। साथ में ऋद्धिराज आ गये।

—मैनेजर का एक्सीडेंट सुन कर बड़ा अफसोस हुआ।

मैं क्या जवाब देती?

—पर मेरा काम तो आपके रहने से हो जायेगा।

पता नहीं क्यों मुझे वह आदमी अच्छा नहीं लगा। मैंने बैठने को भी न कहा। वह अपने-आप ही बैठ गया।—माफ़ कीजियेगा मैं सिगरेट के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। कह कर सिगरेट पीना शुरू कर दिया। कितना बदतमीज़ है! वह बोलता चला गया। पहले तो मुझे

कुछ खटका पर पीछे उसकी बातें जँचने लगी। वह अमेरिका, योरुप और संसार का बहुत बड़ा हिस्सा भ्रमण कर चुका था। उसकी पोशाक, उसका बोलने का ढंग पूर्ण योरूपीय था। वह पश्चिमी सभ्यता की तारीफ़ करता चला गया और मैं ध्यानसे सुनती रही। किसी को शायद यह भान भी नहीं होगा कि हम आज से पहले अजनबी थे। समय के बीतने का मुझे खयाल ही नहीं रहा। मैनेजर साहब और रामलालजी का अभाव कुछ कम हो गया। जीवन जीने के लिए है, मरने के लिए नहीं। रामलाल और मैनेजर साहब मरना जानते थे परन्तु यह तो जीवन को हँसते-हँसते गुज़ारना चाहते हैं। बहुत दिनों के बाद मैं भी हँसी।

—अच्छा, टेंडर की बात फिर कभी करेंगे। आप को जाने में देर हो रही होगी। चलो, मैं ही पहुँचा दूँ। मैं भी आपके घर पर चलता हूँ।

मैं एकाएक सहम गयी। मेरे भोलेपन के कारण इसका साहस इतना बढ़ गया है। फिर भी विनम्र होकर कहा—

—क्यों तकलीफ़ कीजियेगा ? मैं तो आफिस की मोटर से जाऊँगी। आजकल मैनेजर साहब की अनुपस्थिति में मैं ही कार ले जाती हूँ।

—अच्छा-अच्छा, मैं चलता हूँ। बहुत जल्दी आऊँगा। टेंडर के लिए ज़रा मेरे ऊपर कृपा कीजियेगा।

नमस्कार करता हुआ ऋद्धिराज चला गया। दीवार पर टँगी घड़ी कह रही थी कि घर जाने में देर हो गयी है पर मेरा मन जाने को नहीं कर रहा था। आज पियन भी जाने के लिए विचलित नहीं हो रहा था। पर ड्राइवर तो मेरा इन्तज़ार कर रहा होगा। मुझे पहुँचा कर उसे फिर वापिस आना है। पर नीचे जाकर पता चला कि मोटर खराब हो गयी है। मरम्मत के लिए वर्कशाप ले जाना पड़ेगा। मैं पैदल ही बस-स्टाप की ओर चल पड़ी। इसी समय एक कार बग़ल में आकर रुक गयी। यह कार ऋद्धिराज की थी। मैं 'न' न कह सकी। वह मुझसे ठेका लेना चाहता है इसलिए तो मेरी चमचागिरि कर रहा है। तिमिला को नहीं पर आफ़िसर को तो मोटर पर चढ़ने का अधिकार है। यह एक दिन का उसकी कार पर जाना मेरे जीवन में एक नयी लहर के आगमन का सूचक बना। वह आफिस में ही नहीं, घर पर भी यदा-कदा आने लगा। भाई-

साहब को यह पसन्द नहीं था परन्तु भाभी से उसका काफी मेल-मिलाप हो गया था। उससे द्वारा लाये हुए उपहारों के कारण मेरा कमरा ही नहीं सारे घर का वातावरण ही बदल गया था।

ऋद्धिराज मेरे अतीत से घबरायेगा नहीं। पश्चिमी सभ्यता के प्रेमी को इसकी परवाह भी न होगी। उन दिन भी कह रहा था कि मनुष्य मनुष्य बन कर पश्चिमी देशों में जी रहा है। वहाँ का जीवन जीवन है। न कोई बन्धन और न ही ज़बरदस्ती। जिसके साथ इच्छा हो शादी करो और जब चाहो तलाक ले लो।

एक दिन तो उसके आने के इन्तज़ार में बहुत ही खो गयी थी। कभी भी छुट्टी न लेने वाली मैं अब तो काफी छुट्टियाँ लेने लगी थी। उस दिन भी छुट्टी लेकर घर में ऋद्धिराज का इन्तज़ार कर रही थी। वह मेरे जीवन में इतना समा गया कि मेरा सारा जीवन ही बदल गया। उसकी याद आते ही मुझे नाचने की इच्छा हो जाती और अब मैं गुन-गुनाने भी लग जाती हूँ। मैंने स्वयं अपने से पूछा कि क्या मैं ठीक रास्ते पर जा रही हूँ ?

दीवार पर टँगे शीशे के नज़दीक चली गयी। शीशे पर उभरती मेरी छाया ने मुझे दुत्कार दिया। उसका रूप देख कर मैं डर गयी। उसके चेहरे में उभरती हुई भावना, जिसमें मेरे लिए अवहेलना थी, को देखने में मैं असमर्थ हो गयी। मुझे उस छाया की हत्या करने की इच्छा हो गयी। मेरा मन हार गया। मैं पलंग पर आकर लेट गयी। मेरा गला भर आया। आँखों से आँसू छलछला पड़े। मैं एकाएक उठ पड़ी। किसी को अपने मन की व्यथा सुनाने की प्रबल इच्छा हुई। पर मैं जाऊँ कहाँ ? मैं संभलने की कोशिश करने लगी। मैंने मन को कहा कि इतना भयभीत होने की क्या ज़रूरत है ! जीने के लिए विश्वास की आवश्यकता है। विश्वास से प्रेरित होकर मैं फिर शीशे के पास चली गयी। वहाँ तो तिमिला हँस रही थी। मुझे अपना खोया विश्वास मिल गया। दिन ढल कर रात आ गयी पर ऋद्धिराज उस दिन न आया। भाभी के कहने पर भी मैं खाना खाने न गयी। पता नहीं क्यों मेरे विश्वास को एक सदमा लगा। रात-भर नींद

न आयी। बार-बार खिड़की की ओर देखती थी कि कब सवेरा हो। पर सवेरा तो हो ही नहीं रहा था। घड़ी बंद हो गयी थी। कहीं मेरा ज़ीवन भी इसी तरह एकाएक बेमौक़े रुक न जाये ? रुक कर अंत न हो जाये। नहीं, नहीं, मुझे ऐसा विचार नहीं करना चाहिए। अब मेरा जीवन कभी रुक नहीं सकता। मुझे मेरा जीवन मिलने वाला है। रेत की दरार की नज़्म को गाने वाला मिल जायेगा। पर फिर भी मन को शांति नहीं मिल रही थी। मुझे धोखा दे दिया गया तो ? पर क्यों ? ऋद्धिराज मुझसे प्रसन्न है। आफिस में भी सब ठीक है। घर में मेरा सम्मान बढ़ गया है। कहीं कुछ नहीं है पर फिर भी मैं मन की उदासीनता के कारण को जान न सकी। मैं उठ कर खिड़की पर चली गयी। पर्दों को हटा दिया। बाहर का अंधकार कमरे के अंधकार से एकाकार हो गया। मेरे मन में एक अजीब-सा भय छा गया। ऐसा लगा कि बाहर के अंधकार ने किसी को अन्दर ला दिया है और यह नया वातावरण मुझ पर व्यंग्य कर रहा है। मैंने काँपते हाथों से लालटेन जलायी। वहाँ कोई नहीं था। मेरा कमरा मेरी अवस्था को देख कर चिन्तित लग रहा था। कमरे की दृष्टि में एक दर्द था। उस दर्द को देखने की मुझ में हिम्मत न रही और मैंने लालटेन बुझा दी। प्रकाश से बदतर मुझे अंधकार लगने लगा। एक मन ने कहा यह अँधेरा कभी न घटे। मैं खिड़की में बैठ गयी। अंधकार में भी अब दिखने लगा था। पगडण्डियाँ खेतों को पार करती हुई मेरे कमरे से दूर चली जा रही थीं। इसी तरह मेरे जीवन को भी इस घर को छोड़ कर दूर जाने की इच्छा होती है। क्या मेरा स्वप्न कभी पूर्ण होगा ? स्वप्न भी कभी किसी का पूरा होता है ! स्वप्न स्वप्न ही है यह कभी सत्य नहीं हो सकता। मेरा तन-मन काँप उठा। मैंने खिड़की को ज़ोर से बंद कर दिया। निढाल होकर पलंग पर गिर पड़ी। जीवन समीप आकर कट जाता है। यही मेरे जीवन की परिभाषा है। हर बार जीवन मेरे प्रांगण में तो आ जाता है पर पता नहीं क्या समझ कर वहीं से लौट जाता है। रामलालजी, मैनेजर साहब और अब ऋद्धिराज जी। मैनेजर साहब से तो शायद अब मेरी कभी मुलाक़ात भी न हो। मुझे उन पर तरस आ रहा था। कितने भोले थे वह और भोले-

पन का फल भी तो मिल गया। मैं उनको सँभाल सकती थी। मैं उनके जीवन में बहार ला सकती थी। पर अब इन विचारों से क्या फ़ायदा? जो होना था हो चुका। मुझे किसी की ज़िन्दगी नहीं बल्कि अपनी ज़िन्दगी को देखना है। मैं उनके लिए क्या कर सकती थी? मेरी उनसे शादी नहीं हो सकती थी क्योंकि वे तो विवाहित थे। उनकी भूल थी कि उन्होंने आफिस को अपना घर समझा, आफिस को एक परिवार के रूप में देखना चाहा। यह संभव नहीं था। आफिस तो एक नौकरी है। आफिस में संबंध आफिस-सा होना चाहिए, आत्मीयता का नहीं। मैनेजर साहब ने आत्मीयता जतायी तो उन्हें एक धक्का लगा और उनका जीवन ही उनसे उखड़ गया। मेरे जीवन के नज़दीक आकर दूर चले गये। अब से मैं किसी को अपने नज़दीक नहीं आने दूंगी। मैंने उसी दिन उनकी याद की लाश दफ़ना दी।

अभी तक कमरे और बाहर के अंधकार में कोई फ़रक नहीं आया था। प्रकाश की किरणें अभी काफी दूर थीं। मैं रामलालजी से मिलना नहीं चाहती हूँ। एक बार आफिस के गेट पर मिले थे पर उन्होंने मुझे देखा नहीं। अब देखेंगे ही क्यों? उनकी और तारा की शादी पक्की हो चुकी है। इसके लिए मन नहीं मानता परन्तु लोगों के कहने पर कैसे अविश्वास करती? वैसे तो तारा ने भी इनकार कर दिया है पर यह दुनिया फ़रेब है, धोखा है।

पूर्व का आकाश खुलने लगा था। प्रकाश और अंधकार का यह संगम देखते ही बनता था। अगर तारा रामलालजी से शादी कर ले तो क्या हुआ! मेरा भी तो ऋद्धिराज है। उनसे किस बात में कम है? सुन्दर भी है, धनी भी। बातें भी स्पष्ट रूप में करता है। फिर भी मन नहीं मानता था। अन्दर-ही-अन्दर चिल्ला पड़ी। रामलालजी पर मेरा अधिकार है। वह केवल मेरे ही पति हो सकते हैं। मैं जान दे सकती हूँ पर तारा की शादी उनसे नहीं होने दूंगी। रामलालजी पर सिर्फ मेरा ही अधिकार है। तब ऋद्धिराज पर किसका अधिकार है? सब पर मेरा अधिकार है। सब मेरे पति हैं अपने विचारों को देख कर मैं स्वयं ही चौंक गयी। यह क्या? सब मेरे पति हैं और कोई मेरा पति नहीं! मैं

विचारों में उलझती गयी। शरीर और विचार दोनों थक गये। बेजान-सी बिस्तर पर लेट गयी।

जब मैं उठी तो दिन पर्दों से छन कर कमरे में आ चुका था। मन में गहरी उदासीनता छायी हुई थी। जिधर देखो एक डरावनी-सी चुप्पी बिखरी थी। उठने को जी नहीं चाह रहा था पर आफिस भी जाना था। मैं अनमनी-सी उठ कर खिड़की पर चली गयी। मैंने देखा कि घर की ओर आती हुई एक पगडंडी पर भाभी और रामलालजी बातें करते हुए आ रहे हैं। मेरी आँखों ने विश्वास नहीं किया परन्तु यह सत्य था। मैं खिड़की से हट गयी। क्या बातें कर रहे होंगे? मेरी ही बातें होंगी। मेरे और ऋद्धिराज के विषय में या तारा और अपने बारे में। यह सब बकवास है। मुझे इन सब बातों की क्या ज़रूरत है! फिर भी कान उन बातों को जानने के लिए विह्वल हो रहे थे। आँगन में आने के पश्चात् सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। बातों की आवाज़ सुनायी दे रही थी पर स्पष्ट नहीं थी। मैं उठ कर दरवाज़े के पास चली गयी। मेरे और ऋद्धिराज के विषय में बात हो रही थी। मेरा शरीर काँपने लगा। भाभी तो चिन्तित होगी ही पर समाज वाले भी चुप नहीं रहेंगे। मैं तो आफिस चली जाती हूँ पर पीछे भाभी को सब सुनना पड़ता है। उन्होंने मेरे विषय में ऐसी बातें करके कोई अच्छा काम नहीं किया। मैंने दरवाज़ा खोल दिया पर मेरे मुँह से कुछ न निकला। रामलालजी स्वयं कहने लगे—

—तिमिला, अब तो तुमको मुझसे बात करना भी अच्छा नहीं लगता। कितनी बार फ़ोन किया पर तुमने मुझसे बात करने से इनकार कर दिया।

मैंने कुछ न कहा। हाँ, मैंने इनकार कर दिया था। मैं उनका सम्मान करती थी। उनमें काफी परिवर्तन हो चुका था। मेरे प्यार और स्नेह के आधार पर मुझे कठपुतली बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि जैसा वे कहें मैं करूँ पर मैं इसके लिए तैयार न थी। और अब उन्होंने भाभी को मेरे और ऋद्धिराज के विरोध में भड़का कर अपनी नीचता का सबूत दे दिया पर फिर भी मैं उनको दुत्कार न सकी।

—देखो तिमिला, आज मैं तुमसे यह कहने आया हूँ कि जिस रास्ते पर तुम बढ़ रही हो वह रास्ता भूल-भुलैया मात्र है। वह जीवन नहीं, जीवन की मृगतृष्णा है।

मैं यह सुनने को तैयार न थी पर मजबूर हो गयी। रामलालजी ऋद्धिराज के विषय में कहने लगे—

—ऋद्धिराज का घर पश्चिम पालपा में है। वहाँ से भाग कर काठमाँडू आया है। उसकी एक बीवी है वहाँ और दूसरी काठमाँडू में। उसका काम ही लड़कियों को धोखा देकर अपने जाल में फँसाना है। उसकी शान-शौक़त सब दिखावा है। उसका न तो अपना घर है और न ही गाड़ी। यह सब उसके मालिक का है। वह तो ठेके के लिए इधर-उधर जाता है। ...मेरा विश्वास डगमगाने लगा। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। फिर भी हिम्मत न हारी और आवेश में कहने लगी—

—देखिये आप भाईसाहब के दोस्त हैं इसलिए मैं आपका सम्मान करती हूँ। इसका मतलब यह नहीं कि आप मेरे निजी जीवन में हस्तक्षेप करें। मैं बच्ची नहीं हूँ। मैं अपना भला-बुरा स्वयं सोच सकती हूँ। आप मेरे कमरे से इसी समय निकल जाइये नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। मैं आपको पल-भर भी इस कमरे में देखना नहीं चाहती।

रामलालजी आश्चर्य में पड़ गये पर जल्दी ही सँभल गये। वह बिना कुछ कहे चले गये।

इस तरह मैंने अपने-आप अपने जीवन के पर नोच दिये। एक लम्बी दास्तान का अंत कर दिया। रेत की दरार की नज़्म को गाने वाला एक व्यक्ति मेरे हाथों से निकल गया।

जीवन मुझसे कतराने लगा। मैं तो उसे सँभालती पर फिर भी फिसल जाता था। रामलालजी ने ऋद्धिराज के बारे में सब कुछ ठीक कहा था। यह बात मुझे उस दिन मालूम हुई जब मुझे तारा और रामलालजी की

शादी में जाना था।

बात यों हुई कि ऋद्धिराज बहुत दिनों से न तो आफिस आये और न ही घर। मैं चिन्तित हो उठी। मेरा विश्वास डगमगाने लगा, चिन्ता बढ़ने लगी। एक दिन मैं आफिस न जाकर उन्हें खोजने लगी। निराश होकर लौट रही थी तो बस-स्टाप के लिए लालबत्ती के कारण उनकी कार आकर रुकी। उन्होंने शायद मुझे नहीं देखा। मैंने ही उन्हें बुलाया। वे कार से निकल कर मेरे समीप आये और मुझे लेकर कार की ओर चले गये। व्यापार के सिलेसिले में वह हांगकांग गये थे। एकाएक जाना पड़ा इसलिए खबर न दे सके।

—क्या आप सचमुच हांगकांग गये थे ?

—क्यों ? तुमको मुझ पर विश्वास नहीं।

—विश्वास तो करती हूँ पर आपको मुझ पर भरोसा नहीं। इस-लिए तो आप मुझसे सच बात बता नहीं पाये।

—यह मैं क्या सुन रहा हूँ !

मैंने रामलालजी की वही सब बातें सुना दीं। वे इनकार न कर सके।

—देखो तिमिला, यह संसार ही ऐसा है। यदि यहाँ जीवन पर बनावटी खाल न चढ़ाई जाये तो कोई नहीं पूछेगा। तुमने सुना वह सब ठीक है। मैं वह नहीं जो दिखता हूँ।

—घबराइये नहीं।

—कुछ मजबूरी भी होती है। पर...।

कार की स्पीड बढ़ती गयी। इससे अधिक बातें न हो सकीं। आखिर मेरा घर नज़दीक आ गया। मैं बहुत कुछ कहना चाहती थी पर कह न सकी। मैं किसी के पति को अपना पति बनाना नहीं चाहती थी पर छोड़ देना भी मुश्किल था। मैं कार से उतर गयी। ऋद्धिराज भी साथ आने लगे। मैंने उनको रोक दिया और कहा—

—ऋद्धिराजजी, बुरा न मानियेगा। आज से आप इस घर में न आयें तो अच्छा है और तिमिला को सदा के लिए भूल जायें।

ऋद्धिराज ने हँसते हुए कहा—

—ऐसी भी नाराज़गी क्यों ? फिर भी आपकी आज्ञा सर-आँखों पर। मेरे टेण्डर पर तो ध्यान रखियेगा, तिमिलाजी ! अच्छा धन्यवाद, बाई-बाई !

धूल का एक फव्वारा छोड़ कर कार चली गयी। ऐसा लगता था कि सारी धरती काँप रही हो। शरीर पसीने से तर हो गया। मुझे चक्कर आने लगे। जैसे-तैसे मैं कमरे में पहुँची। आज ही तो रामलालजी की शादी तारा से होने जा रही है। सोचा था, कितना सज कर जाऊँगी। पर अब मैं नहीं जा सकूंगी। टेबुल पर पड़ा निमन्त्रण-पत्र चीख़-चीख़ कर हँस रहा था। मेरे नये जूते, नयी साड़ी और टापकोट—सब व्यंग्य कर रहे थे। मैं इन सबको फेंक देना चाहती थी क्योंकि उन सब पर ऋद्धिराज की धूर्त छाया स्पष्ट दिखायी दे रही थी। पर इतनी ताक़त भी मुझमें नहीं रह गयी थी। मेरे सब सहारे टूट चुके थे। अब जीवन में कोई मोड़ बाकी नहीं था। बस, एक ही याद आती रही, मैनेजर साहब की। पर वे भी इतने दूर गाँव में थे कि मैं जा भी न सकती थी। जाकर भी क्या करती ! मैं रोने लगी। जी भर कर रोयी पर इससे भी कुछ न हुआ। मैं सब बातों को स्वप्न बना देना चाहती थी पर सत्य स्वप्न क्यों होने लगे ?

मेरी तबियत दिन पर दिन ख़राब होती चली गयी। आफिस से मैंने छुट्टियाँ ले लीं। भाईसाहब ने बहुत कोशिश की पर मेरा मन ठीक न हुआ। भाभी का प्यार, स्नेह और ममता मेरे को मन की मौत से बचा नहीं सके। मेरे इस परिवर्तन से सारा परिवार चकित था। मैंने किसी से कुछ न कहा। अपनी पीड़ा को अपने हृदय में ही सँजोये रखा। पर मेरी मानसिक स्थिति बिगड़ती चली गयी। रातों को नींद ने आना छोड़ दिया। खाना तो देखते ही क़ै होने लगती। कभी गाँव के मन्दिर में सुबह से सन्ध्या तक बैठी रहती या फिर नदिया किनारे बैठे सारा दिन पानी से बातें करते हुए बीत जाता। एक दिन इसी तरह की वारदात के बाद घर पहुँची तो दशरथ ने कहा—

—गंगालाल आया था।

—कौन गंगालाल ?

—बुआ, आप भी क्या कहती हैं ? गंगा मैया और कौन ?

बेहोश मन एक बार होश में आ गया पर फिर लुढ़क गया। गंगालाल के पिता की दूसरी पत्नी की मृत्यु हो गयी थी। इसीलिए मुझे वे लेने आये थे। पर उनको क्या पता कि अब वह किसी की पत्नी बनने के योग्य ही नहीं रही। भाईसाहब ने मुझसे पूछा तो मैंने कह दिया—

—वह मुझको नहीं बल्कि मेरी नौकरी को लेने आये हैं। उनको कह दीजिये कि मैंने नौकरी छोड़ दी है। वे अपने आप चले जायेंगे।

गंगालाल की ममता भी मेरे निश्चय को बदल न सकी। वह भी मुझे पहचानता नहीं था। पता नहीं किस कारण से वे लोग कुछ दिनों के बाद चले गये।

मैनेजर साहब कैसे होंगे ? शायद मर ही गये हों। अब मुझे कोई कुछ नहीं कहेगा। रामलालजी भी अब मुझसे नहीं जलेंगे। पता नहीं क्यों मेरा मन किसी जगह अटकता ही रहता है !

आफिस से मैंने छुट्टियाँ ली हुई थीं। उस दिन पियन मेरा वेतन देने आया था। उसे लेकर अन्दर चली गयी। फिर बिस्तर पर लेट गयी। एकाएक ग़ज़ब की उदासी, दुख और निराशा की लहरें मेरे मन में तरंगित होने लगीं। मैं उठ पड़ी। आज मेरा वेतन आया है और उसे तो भाभी को देना था। बैग में देखती हूँ लेकिन वहाँ नहीं था। टेबुल के दराज़ में भी नहीं है। अलमारी में भी नहीं है। तकिए के नीचे भी नहीं है। फिर वह कहाँ रखा है ? शायद मैं पियन से लेना तो नहीं भूल गयी ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता है। उस पियन को तो हम हज़ारों रुपये देकर बैंक में जमा करने के लिए भेजते थे। कहीं हड़बड़ी में मैंने बिस्तर के नीचे तो नहीं रख दिया। मैं बिस्तर को उलट-पुलट कर देखने लगी। मेरी परेशानी बढ़ती गयी। मेरा वेतन कहीं नहीं था। मैंने सारी वस्तुओं को उनके स्थानों से निकाल फेंका परन्तु मुझे मेरा वेतन न मिला। दरवाज़े में खड़ी भाभी एकटक मुझे देख रही थीं। उनके अवाक् चेहरे को देख कर मैं भयभीत हो गयी।

—तिमिला, क्या खोज रही हो ?

—पियन मेरा वेतन दे गया और उसे आपको देने के लिए खोज

रही थी।

—पगली, तुम्हें क्या हो गया है ? तुम्हीं ने तो मुझे आकर दिया था। मैंने सोचा कि यह कहीं नाराज़गी से तूने अपने खर्च के लिए कुछ नहीं रखा इसलिए देखने आयी थी।

मैं एकाएक चौंक गयी। मुझे अपने से भय लगने लगा। मैं अपने में स्वयं शर्मिन्दा हो गयी।

मैं स्वयम्भू पर्वत के नीचे के मैदान में पहुंच चुकी थी। मैंने इस पहाड़ की परिक्रमा करने की ठान ली। एक सैनिक स्वर ने मेरे पाँवों को आगे बढ़ने से रोक दिया—उधर रास्ता बन्द है, चाँदमारी हो रही है। हवा में फरफर करते हुए खून जैसे रंग की पताका ने मुझे सचेत किया। वातावरण में गोली के चीखने की आवाज़ आयी। मेरे पैर लौट पड़े। पर पूर्णिमा के वातावरण से सुसज्जित स्वयंभू के पर्वत ने मुझे नहीं छोड़ा।

आगे की ओर बनी पत्थर की सीढ़ियों पर मैं चढ़ने लगी। ऊँचाई बढ़ती गयी। गरुड़ पर चढ़ कर, मयूर के संग नाच कर, घोड़े पर सवार होकर, हाथी पर लेट कर शार्दुल सिंह पर बैठ कर भी मैं चोटी पर न पहुँच सकी। थकावट से मेरी हालत बुरी हो गयी। नज़रों ने साथ देना छोड़ दिया। संसार ही धूमिल-सा हो गया। लगता था कि मेरे प्राण सिर पर आकर अटक गये हों। मैंने आँखें मूंद लीं पर सर्वदर्शी चक्षु ने मुझे दुत्कार दिया। कमल पर पड़े वज्र ने मुझे शक्ति प्रदान की। मैं चढ़ती चली गयी। कितना मनोरम वातावरण था ! कुछ आराम किया और फिर चैत्य की परिक्रमा करने लगी। प्रार्थना चक्र को घुमाते हुए एक लामा चैत्य की लगातार परिक्रमा कर रहा था। बग़ल में एक पागल टूरिस्टों से कह रहा था—तुमको सब प्राप्त है परन्तु मुझे भी मेरी आत्मा प्राप्त है। दार्शनिक बातों में सारा वातावरण बहक गया। हारिती माता के मंदिर के नज़दीक पाँच गृहस्थ भिक्षु पंच बुद्ध बनने की कोशिश कर

रहे थे। शक्ति की प्राप्ति से मानव देवता बन सकता है। मैं बढ़ती चली गयी। कुछ किसान प्रौढ़ाएँ असंख्य दीप जला रही थीं। अपने को जला कर भी औरों को ज्योति देना सीखो। आकाश बुद्ध रंगों की पताकाओं से लहरा रहा था। एकाएक किसानों के एक दल ने वातावरण को मधुर संगीत में घोल दिया। लामाओं के गुम्बा से हुई विचित्र वाद्य ध्वनि ने मन को बेचैन बना दिया। ...ठीक इसी क्षण गोली की आवाज़ गूंजी। बानर परेशानी से चिल्लाने लगे। भक्त जन अवाक् देखते रह गये। सारा स्थान चैत्यों में बिखरा गंभीर बन गया। मैं भी होश में आ गयी। मैं कहाँ चली आयी! भाईसाहब मुझे ढूंढ़ रहे होंगे। भाभी मेरे लिए कितनी व्याकुल होगी! मैं अपने घर की ओर जल्दी-जल्दी बढ़ने लगी।

सारी राहों ने मुझे खदेड़ कर उस थूर की चोटी पर पहुँचा दिया था। मैं राहों से घिर गयी थी। मैं कहीं भी जा नहीं पा रही थी। लगनखेल का रास्ता टूटा हुआ था। टुडिखेल का बिना पत्तों वाला पेड़ रास्ता छोड़ने को तैयार नहीं था। बिजली के खम्बे अपने भीतर के तारों का जाल बुन कर मुझे उसमें बाँध लेने को चंचल हो रहे थे। हताश होकर मिट्टी के उस थूर पर मैं गिर पड़ी। थूर की चोटी पर पड़ने वाली सूर्य की किरणों की चमक को देख कर मेरे मन को एक सुख की अनुभूति हुई। सारा वातावरण भौंचक्का होकर मुझे देख रहा था। मैं थूर की चोटी पर बने चैत्य में चढ़ गयी। मुझे चक्कर आने लगे और मैं कूद पड़ी। अपने चारों ओर आँखों को फैलाये ऐसा लगता था कि विक्षिप्त कान्तिपुर का हृदय फट कर धरहरा, घंटाघर और स्वयंभू आकाश में उड़ रहा था। मस्ती-भरे ललितपुर को चारों ओर से दरबारों ने अपने आलिंगन में कसा हुआ था।

सामने के एक तालाब में एक हंस का जोड़ा तैर रहा था। मुझे नाचने की इच्छा हुई। मैं खड़ी होकर तीव्र गति से अपने आप ही चक्कर लगाने लगी। ढलान के कारण मेरा पैर फिसल गया। थूर को अपने आलिंगन में लेने की मेरी कोशिश बेकार गयी। मैं फिसलती चली गयी।

नीचे पहुँचते ही किसी ने एकाएक मुझे उठा लिया ।

—क्या दिन-भर तुम्हें खोजता फिरूँ ?

भाईसाहब की आवाज़ से मेरी चेतना लौट आयी ।

—तिमिला, यह अच्छा नहीं है । डाक्टर घर पर आया है और तुम इस तरह गायब हो ।

मैं भी कितनी मूर्ख हूँ ! रामलालजी से मिलने की आशा में मैं वहाँ पहुँच गयी थी । रामलालजी अब मेरे कौन होते हैं ! वे तो तारा के पति हो चुके हैं। मन मसोस कर भाईसाहब के साथ अपने-आप में चकित चली आयी ।

मैं आफिस के तालाब के नज़दीक खड़ी थी । वहाँ सुहावनी चाँदनी छिटकी हुई थी । अपने नीचे भी और ऊपर भी आकाश को देख कर मेरा जी ऊब गया । कहीं दो आकाशों के बीच में फँस न जाऊँ इसलिए कुछ पीछे हट गयी ।

यह तालाब मेरे जीवन का तालाब है । अनजाने में यहाँ मैंने मैनेजर साहब की इंतज़ार की । कार के न आने पर कभी-कभी हम दोनों यहाँ बातों में मग्न रहते थे । मैं तालाब का चक्कर लगाने लगी । मुझे ऐसा लगा कि कोई मेरे पीछे आ रहा है पर न तो उसका शरीर दिखायी देता था और न ही आवाज़ सुनायी देती थी । पर फिर भी ऐसा लगता था कि मैं वहाँ अकेली नहीं हूँ । धरती भी चुप थी, आकाश भी शान्त था । मैं लेट गयी । तब मुझे धरती के अंदर से एक पुरुष और एक नारी की प्रेम भरी बातें सुनायी देने लगीं । मेरी सतर्कता बढ़ती गयी । मैं आवाज़ को पहचान गयी । आवाज़ मेरी और मैनेजर साहब की थी ।

अचानक ही मुझे प्यास लग आयी । प्यास इतनी उत्तेजक हो गयी कि लगता था मेरा दम घुट जायेगा । मैं दौड़ कर तालाब की सीढ़ियों से उतरने लगी । मैंने पानी हाथों में लेकर पिया पर फिर भी तृप्ति न हुई । मैंने अपना मुँह ही पानी में फैला दिया । कितना स्वादिष्ट था पानी ! लगता है मैंने पहले भी ऐसा पानी पिया था । इसके स्वाद से मैं परिचित

हूँ। तब मैं पहचान गयी कि यह तो मैनेजर साहब के खून का स्वाद है। हाँ जी—मैनेजर साहब का खून! मैंने ही उनका जीवन वरबाद किया है। एक अच्छे जीवन की हत्या कर दी। मैं भागने लगी। आखिर एक चौराहे को पार करने के बाद मैंने पीछे मुड़ कर देखा। आफिस से आती हुई सुनसान सड़क उँगली उठा कर कह रही थी—आज तो तुम बच गयीं पर कभी......।

जिधर से भी जाने की कोशिश करती आफिस की ओर जाने वाले रास्ते बंद हो जाते। प्रत्येक राह में मैनेजर साहब की अंधी आँखें मेरा रास्ता रोक लेती थीं। मैंने टेकू की ओर से जाना चाहा तो वहाँ मैनेजर साहब का खून से सना सिर सड़क के बीचोंबीच पड़ा था।

मेरी अवस्था पर आकाश को तरस आ गया। उसकी सहस्र आँखों से आँसू छलक पड़े। सुनसान राह में मैं नदी के किनारे-किनारे चलने लगी। आकाश के रोदन से धरती की छाती फटने लगी। नदी मेरा पीछा कर रही थी। मैं भागने लगी और आखिर एक पुल के नीचे पहुँच गयी। धीरे-धीरे ऊपर चली गयी। उस पुल पर मैं अकेली थी। नीचे का सारा दृश्य आँखों में समा गया। किनारे पर एक लाश राख में बदली पड़ी थी। मानव-जीवन का कितना दर्दनाक अंत! नदी ने अपने हाथों को मेरी ओर फैलाया। एक भैंसा नदी में तैर रहा था। मैंने नीचे जाकर पानी का स्पर्श किया। कौन कहता है कि मैं रेत हूँ! मैं तो एक नदी हूँ—नदी! पर नदी के सूख जाने पर रेत ही रह जाती है और कड़ाके की धूप में दरारें पड़ जाती हैं। मैं किनारे-किनारे दौड़ने लगी। नदी ने एक गज़व का मोड़ लिया। एक कुत्ता बच्चे की लाश पानी से बाहर खींच रहा था। मैंने पास जाकर लाश को उठा लिया। गंगालाल से बिछुड़ते समय वह इतना ही बड़ा था। मैंने उसे हाथों में घुमाना शुरू कर दिया और बीच धार में फेंक दिया। मैं होश में आ गयी। मैं कहाँ हूँ? कुत्ते की रोनी आवाज़ आने लगी। विखरी हुई मूर्तियाँ मुझे देख कर हैरान हो गयीं। अस्त होता हुआ सूर्य मेरी अवस्था पर काँप उठा।

अँधेरे ने आकाश का पीछा करना शुरू कर दिया। मैं सड़क पर भागती चली गयी पर देखती क्या हूँ कि मैं तो आफिस के गेट पर पहुँच गयी हूँ। यह आफिस के मैनेजर साहब की यादों का चिनार है। इसलिए यह आफिस मेरा है। मेरे मैनेजर साहब, मेरा आफिस...चिल्लाती-चिल्लाती आफिस में घुस गयी।

पूर्णिमा की रात में मेरी उत्तेजना बढ़ जाती है। मेरी बौखलाहट चरम सीमा पर पहुँच जाती है। फिर एक पखवारे के लिए मैं शान्त हो जाती हूँ और लगता है कि मेरा जीवन कटने से बच गया। आज आने वाली रात पूर्णिमा की है। मेरे एक अँधेरे जीवन की रात !

रेत !

ऐसा लगा किसी के चिल्लाने की आवाज़ से कान फट जायेगा !

मैं एकाएक उठ पड़ी।

रेत की दरार ! !

मेरा मन चीत्कार उठा।

एक नज़्म रेत की दरार की ! ! !

मेरा दिल, मेरा संसार कराह पड़ा।

मेरे कमरे में चारों ओर रेत ही रेत थी। दरार ही दरार और वातावरण में इसी की नज़्म गूँज रही थी। मैं चारों तरफ से घिर गयी। मैंने अपनी आँखें और कान बन्द कर लिये। इस पर भी 'की होल' से भाईसाहब और भाभी की बातों की आवाज़ आ रही थी। मैं बन्द दरवाज़े से लिपट गयी।

रेत की दरार की एक नज़्म ! जी हाँ, वहाँ भी सुनायी दिया—इस घर में तुम्हारे लिए जगह नहीं है। तुम्हारी माँ कमाती है। उसी के पास जाओ, कह कर गंगालाल को सौतेली माँ ने घर से निकाल दिया। अब वह एक होटल में प्लेटें साफ करके अपना निर्वाह कर रहा है। मैं खिड़की

से आँगन में कूद पड़ी। चोट तो लगी पर बेटे की चोट इससे अधिक थी। पगडण्डियों पर गुज़रती जा रही थी। एक काग-भगोड़े को देख कर मैंने आलिंगन किया। पर यह मेरा पुत्र गंगालाल नहीं था। मेरी प्यास न बुझी, सामने की नदी सूखी पड़ी थी। मैं रेत में चली गयी। मैं वहीं लेटे-लेटे करवटें बदलने लगी। मुट्ठी-भर रेत उठा कर हवा में फेंका और मैं रेत में दौड़ने लगी। मेरे पदचाप के निशान बनते और टूट जाते। जीवन तो रेत पर लिखी गयी एक नज़्म है। आकाश का चन्द्रमा धरती की तिमिला से डर कर सिकुड़ने लगा। अपनी छाया को रेत में चलता देख कर मैं सहम गयी। एकाएक मेरी चेतना लौट आयी। मैं यहाँ क्यों आयी? इसका जवाब प्रकृति में फैला पूर्ण चन्द्रमा दे रहा था। मैं घर की ओर भागने लगी। एक दरार में मेरा पैर फँस गया। मैं धप्प से बैठ गयी।

रेत की दरार की नज़्म! मेरा मन विह्वल हो उठा। मेरी विकलता ने मुझे परेशान कर दिया। मैंने अपने सारे वस्त्र उतार दिये। अपने बालों पर झपट पड़ी। रेत के कणों से जी भर कर नहाया। इस पर भी शान्ति नहीं हुई। तब मैं सारी नसों को एकत्र करके ज़ोरों से चिल्लायी। वातावरण में एक प्रतिध्वनि गूंज उठी। यह व्यंग्य, यह परिहास! मुझे लगा कि अब मेरा 'मैं' टूट चुका है, कट चुका है, मर चुका है।

एक दिन मेरे पैर अचानक ही मुझको शहर की ओर ले गये। वहाँ आफिस के ड्राइवर से भेंट हुई। बातों ही बातों में उसने मुझे बताया कि मैनेजर साहब आँखों का इलाज कराने आये थे। इलाज तो न हो सका परन्तु उनकी पत्नी की अचानक हृदय-गति बन्द हो जाने से मृत्यु हो गयी। और वे फिर गाँव ही चले गये। मन में कसक उठी कि क्यों न मैनेजर साहब के गाँव ही चली जाऊँ। शायद उनसे एक बार मिलने से चित्त को शान्ति मिल जाये। भाईसाहब मान गये। मैं अकेली ही बस में चली गयी। शाम के समय मैं पहुँच गयी। गाँव में इतने बड़े आदमी का पता

ग्रासानी से चल गया। वहाँ पहुँचते ही ग्राशा की एक फीकी किरण मन में छा गयी। मुझे लगा कि मेरे मन-मन्दिर का देवता ग्रब मिल जायेगा। मैं उनके घर पहुँची। कुछ बच्चे बाहर खेल रहे थे। शायद उनके बच्चे। मैंने प्यार से एक को उठा लिया। सारे बच्चे सहम-से गये। मैं ऊपर चली गयी।

—कौन ?

ग्रावाज़ में कोई फर्क़ नहीं था। मैं बोल न सकी। मेरे मन में भूचाल-सा ग्रा गया। मैंने बहुत देर के बाद कहा—

—जी, मैं तिमिला।

—तिमिला !

उनके स्वर में ग्राश्चर्य की भावना वातावरण में चीख पड़ी।

—क्यों ग्रायी हो ?

उनके स्वर में रूखापन ग्रा गया। मैंने यन्त्रवत् उत्तर दिया—

—जी, यों ही।

—जाग्रो, तिमिला ! ग्रब मेरे पास कुछ नहीं है। जब मैंने तुमको जीवन देना चाहा तो तुम मुझसे भागती रहीं ग्रौर ग्रब तो मेरे पास केवल मृत्यु है जो मैं तुमको नहीं दे सकता क्योंकि मैं तुमसे...।

—पर ग्राप तो विवाहित थे।

—नहीं तिमिला, मेरी कोई पत्नी नहीं थी। लोगों ने ग़लत समझा। वह तो मेरी सौतेली माँ थी। पर जो भी हुग्रा ग्रब तो देर हो चुकी है। जाग्रो तिमिला, मुझ पर इतना एहसान करो। मुझे शान्ति से जीने दो। मैं ग्रब जीवन से थक गया हूँ।

मैं कह ही क्या सकती थी ! ग्राँखों के सामने ग्रँधेरा छा गया। कमरे से बाहर चली ग्रायी। काफी देर उस जगह रुकी रही। मेरा मन कहता था कि वे बुला लेंगे पर ग्रन्दर से कोई ग्रावाज़ न ग्रायी। ग्रनमनी-सी होकर सीढ़ियों की ग्रोर चल पड़ी। कितने विश्वास के साथ इन सीढ़ियों पर जीवन पाने के लिए चढ़ी थी ग्रौर ग्रब उतने ही विश्वास के साथ जीवन खोकर उन्हीं सीढ़ियों पर उतर रही हूँ...। मेरे भाग्य में यही लिखा है जीवन मेरे समीप ग्राकर कट जाता है।

दूर पहाड़ी के नीचे रेत बिखरी हुई थी, जिसमें दरारें पड़ गयी थीं जिसकी नज़्में मेरे कानों में गूँजने लगी।...मैं एक नज़्म हूँ—रेत की दरार की।

सूनी सड़क पर बेतहाशा भाग रही थी पर मेरा पीछा रेत की दरारें अपनी नज़्म सुनाने के लिए कर रही थीं। मुझे अपने चारों ओर रेत ही रेत, दरार ही दरार दिखायी देने लगीं। मैं स्वयं एक नज़्म बनी इनमें समाती चली गयी।